### २.२. वस्त्रत्याग से ही अपवादलिंगधारी की शुद्धि

अधोनिर्दिष्ट गाथा भी पूर्वोद्धृत है। इससे भी स्त्रीमुक्ति का निषेध होता है। अतः प्रत्यक्ष प्रमाण हेतु यह भी फिर से उद्धृत की जा रही है—

**अववादियलिंगकदो विसयासत्तिं अगूहमाणो य।**
**णिंदणगरहणजुत्तो सुज्झदि उवधिं परिहरंतो॥ ८६॥** भ.आ.।

यह गाथा कहती है कि अपवादलिंगधारी अर्थात् वस्त्रादिपरिग्रहधारी गृहस्थ जब शक्ति को छिपाये बिना अपने सपरिग्रहत्व की निन्दा-गर्हा करता हुआ परिग्रह का त्याग करता है, तब शुद्ध होता है अर्थात् मोक्ष के योग्य बनता है।

स्त्री वस्त्रपरिग्रहात्मक अपवादलिंग का परित्याग कर नहीं सकती, अतः उसमें मोक्षयोग्य शुद्धता का आविर्भाव भी नहीं हो सकता। यह स्त्रीमुक्ति के निषेध का भगवती-आराधना में उपलब्ध तीसरा अकाट्य प्रमाण है।

### २.३. पुरुषशरीर ही संयम का हेतु

शिवार्य ने निम्नलिखित गाथाओं में पुरुषशरीर को संयम का साधन बतलाया है और उसकी आकांक्षा को प्रशस्तनिदान कहा है—

**संजमहेदुं पुरिसत्त-सत्त-बलविरियसंघडणबुद्धी।**
**सावअ-बंधुकुलादीणि णिदाणं होदि हु पसत्थं॥ १२१०॥** भ.आ.।

अपराजितसूरि ने इसका खुलासा इस प्रकार किया है—"**संयमनिमित्तं पुरुषत्व-मुत्साहः,**[२५] **बलं शरीरगतं दार्ढ्यं, वीर्यं वीर्यान्तराय-क्षयोपशमजः परिणामः, अस्थिबन्ध-विषया वज्रऋषभ-नाराच-संहननादिः। एतानि पुरुषत्वादीनि संयमसाधनानि मम स्युरिति चित्तप्रणिधानं प्रशस्तनिदानम्।**[२६] **श्रावकबन्धुनिदानम् अदरिद्रकुले अबन्धुकुले वा उत्पत्ति-प्रार्थना प्रशस्त-निदानम्।**" (वि.टी./भ.आ./गा.१२१०/पृ.६१४)।

**अनुवाद**—"पुरुषत्व, उत्साह, शारीरिक दृढ़ता, वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से उत्पन्न वीर्य-परिणाम, अस्थिबन्धनविशेषरूप-वज्रऋषभनाराचसंहनन आदि संयम के निमित्त हैं। ये पुरुषत्वादि संयम के साधन मुझे प्राप्त हों, चित्त में ऐसा विचार उत्पन्न होना प्रशस्तनिदान है। तथा मेरा जन्म श्रावककुल में हो, अदरिद्रकुल में हो, तथा बन्धुबान्धवरहित कुल में हो, ऐसी प्रार्थना भी प्रशस्तनिदान है।"

---

२५. सत्तं सत्त्वं = उत्साहः।

२६. तत्थ णिदाणं तिविहं होइ पसत्थापसत्थभोगकदं।
तिविधं पि तं णिदाणं परिपंथो सिद्धिमग्गस्स॥ १२०९॥ भगवती-आराधना।

इस गाथा में पुरुषत्व को अर्थात् पुरुषशरीर को संयम का साधना कहा गया है, स्त्रीशरीर एवं नपुंसकशरीर को नहीं, जिससे स्पष्ट होता है कि स्त्रीशरीर संयम का साधन नहीं है, अतः स्त्रीमुक्ति असम्भव है। तथा वज्रवृषभनाराचसंहनन को भी संयम का साधन कहकर यह प्रकट किया गया है कि स्त्रीशरीर संयमधारण में सक्षम नहीं है, क्योंकि कर्मभूमि की स्त्रियों में आदि के तीन संहनन नहीं होते। (गो.क./गा.३२)। यह कथन भी स्त्रीमुक्ति विरोधी है।

आगे पुरुषत्वादि की आकांक्षारूप प्रशस्तनिदान को भी मोक्षविरोधी बतलाते हुए कहा गया है—

**पुरिसत्तादिणिदाणं पि मोक्खकामा मुणी ण इच्छंति।**
**जं पुरिसत्ताइमओ भवो भवमओ य संसारो॥ १२१८॥** भ.आ.।

**अनुवाद**—"मोक्षामिलाषी मुनि 'मैं मरकर पुरुष होऊँ' या मुझे वज्रवृषभनाराचसंहनन की प्राप्ति हो, ऐसा निदान भी नहीं करते, क्योंकि पुरुषादिपर्याय भवरूप है और नाना भवों को धारण करना ही संसार है।"

ग्रन्थकार आगे कहते हैं—

**पुरिसत्तादीणि पुणो संजमलाभो य होइ परलोए।**
**आराधयस्स णियमा तदत्थमकदे णिदाणे वि॥ १२२०॥** भ.आ.।

**अनुवाद**—"जो रत्नत्रय की आराधना करता है, उसे निदान न करने पर भी आगामी जन्म में पुरुषशरीर आदि सामग्री तथा संयम की उपलब्धि नियम से होती है।"

इन समस्त कथनों में भगवती-आराधना के कर्त्ता ने यह सूचित किया है कि पुरुष-शरीर ही संयम का साधन है, स्त्री या नपुंसक का शरीर नहीं, अतः स्त्री एवं नपुंसक की मुक्ति संभव नहीं है।

ग्रंथकार ने नारीशरीर को संयम की बजाय भोग का निमित्त बतलाया है। भोगनिदान का लक्षण बतलाते हुए वे कहते हैं कि देवों और मनुष्यों में होनेवाले भोगों की आकांक्षा करना तथा भोगों के लिए नारीत्व, ईश्वरत्व, श्रेष्ठित्व, सार्थवाहत्व, नारायणत्व और सकलचक्रवर्तित्व की कामना करना भोगनिदान है—

**देविग-माणुसभोगे णारिस्सर-सिट्ठि-सत्थवाहत्तं।**[२७]
**केसव-चक्कधरत्तं पत्थंते होदि भोगकदं॥ १२१३॥** भ.आ.।

२७. "णारि-स्सर-सिट्ठि-सत्थवाहत्तं/ पृ.६१५=नारीत्वम् ईश्वरत्वं श्रेष्ठित्वं सार्थवाहत्वं च।" विजयोदयाटीका / भगवती-आराधना / गा. १२१३ / पृ. ६१५।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इससे यह बात और भी अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है कि भगवती-आराधनाकार नारीशरीर को संयम का साधक नहीं मानते, अत एव वे स्त्रीमुक्तिविरोधी हैं।

आगे चलकर तो ग्रन्थकार और टीकाकार ने स्पष्ट शब्दों में पुरुषशरीर को ही परम्परया मोक्ष का कारण होने से निदान का विषय निरूपित किया है और उसके निदान को संसारवृद्धि का हेतु कहा है—

**जइदा उच्चत्तादिणिदाणं संसारवड्ढणं होदि।**
**कह दीहं ण करिस्सदि संसारं परवधणिदाणं॥ १२३३॥** भ.आ.।

अपराजितसूरि ने इसका खुलासा इन शब्दों में किया है—"**यदि तावत् उच्चैर्गोत्रता पुरुषत्वं, स्थिरशरीरता, अदरिद्रकुलप्रसूतिर्बन्धुतेत्येवमादिकं मुक्तेः परम्परया कारणमपि चित्ते क्रियमाणमपि संसारवृद्धिं करोति ( तर्हि ) कथं न करिष्यति दीर्घसंसारं परवधे चित्तप्रणिधानम्?**" (वि.टी./गा.१२३३/पृ.६२३)।

**अनुवाद**—"उच्चगोत्र, पुरुषत्व, शरीर की स्थिरता, अदरिद्रकुल में जन्म तथा बन्धुबान्धव आदि परम्परया मुक्ति के कारण हैं, ऐसा चित्त में विचारकर इनका निदान करना (इच्छा करना) यदि संसार बढ़ानेवाला है, तो दूसरे के वध का चित्त में निदान करना दीर्घसंसार का कारण क्यों नहीं होगा ?"

इस प्रकार ग्रन्थकार ने सर्वत्र पुरुषशरीर को ही संयम का साधक और परम्परया मोक्ष का हेतु प्रतिपादित किया है, जिससे स्त्रीमुक्ति का विरोध होता है। यह इस बात का प्रमाण है कि आचार्य शिवार्य यापनीयमत के अनुगामी नहीं, अपितु विरोधी हैं।

### २.४. किसी भी स्त्री के मुक्त होने का कथन नहीं

'भगवती-आराधना' में '**किं पुण गुण सहिदाओ**' इत्यादि ९८९ वीं गाथा से लेकर '**तम्हा सा पल्लवणा**' इत्यादि ९९६वीं गाथा तक स्त्रियों के गुणदोषों की चर्चा की गई है। पुरुषों के ब्रह्मचर्य में बाधक होने के कारण स्त्रियों की घोर निन्दा करने के बाद ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं कि "सभी स्त्रियाँ ऐसी नहीं होतीं। बहुत सी स्त्रियाँ गुणवती भी होती हैं। अनेक स्त्रियों ने अपने गुणों के द्वारा लोक में यश फैलाया है। मनुष्यलोक में वे देवताओं के समान हैं और देवों से पूजनीय हैं। उनकी जितनी प्रशंसा की जाय, कम है। तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव और श्रेष्ठ गणधरों को जन्मदेनेवाली महिलाएँ अच्छे देवों और उत्तम पुरुषों के द्वारा पूजनीय होती हैं। कितनी ही महिलाएँ एकपतिव्रत और कन्याव्रत (कौमार=ब्रह्मचर्यव्रत) धारण करती हैं। कितनी ही जीवनपर्यन्त वैधव्य का तीव्र दुःख भोगती हैं। ऐसी भी अनेक शीलवती स्त्रियाँ सुनने में आती हैं, जिन्हें देवों से सम्मान प्राप्त हुआ और शील के प्रभाव से शाप देने और अनुग्रह

करने की सामर्थ्य उपलब्ध हुई। कितनी ही शीलवती स्त्रियों को महानदी का जल-प्रवाह भी नहीं डुबा सका, धधकती हुई घोर अग्नि भी नहीं जला सकी तथा सर्प, व्याघ्र आदि भी उनका कुछ नहीं कर सके। कितनी ही स्त्रियाँ सर्वगुणों से सम्पन्न, साधुओं और पुरुषों में श्रेष्ठ, चरमशरीरी पुरुषों को जन्म देनेवाली माताएँ हुई हैं। सब जीव मोह के उदय से कुशील से मलिन होते हैं और मोह का उदय स्त्रीपुरुषों में समानरूप से होता है। अतः पूर्व में जो स्त्रियों के दोषों का वर्णन किया गया है, वह स्त्रीसामान्य की दृष्टि से किया गया है। शीलवती स्त्रियों में उपर्युक्त दोष कैसे हो सकते हैं?''

यहाँ ग्रन्थकार ने स्त्रियों में शील और व्रतों के द्वारा यश, सम्मान, तीर्थंकरादि का मातृत्व तथा कुछ अद्भुत शक्तियों को पाने की सामर्थ्य तो बतलायी है, किन्तु किसी स्त्री ने व्रतों के द्वारा मोक्ष भी प्राप्त किया है, ऐसा कथन नहीं किया, जबकि ज्ञातृधर्मकथांग में मल्लि, मरुदेवी आदि अनेक स्त्रियों के मोक्ष प्राप्त करने का कथन है। इससे स्पष्ट है कि भगवती-आराधनाकार स्त्रियों में मोक्षप्राप्ति की सामर्थ्य स्वीकार नहीं करते। अन्यथा एक गाथा इस आशय की जोड़ देने में क्या दिक्कत थी? प्रसंग तो स्त्रीसामर्थ्य के निरूपण का था ही।

इस प्रकार भगवती-आराधना का कथन है कि वस्त्रादि परिग्रह के त्याग के बिना संयतगुणस्थान संभव नहीं है, महाव्रत संभव नहीं हैं, मोक्षयोग्य शुद्धि संभव नहीं है तथा पुरुषशरीर के अभाव में संयम की साधना असम्भव है। ये इस बात के सुदृढ़ प्रमाण हैं कि भगवती-आराधना में स्त्रीमुक्ति अमान्य की गयी है।

सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री ने भी लिखा है कि ''इस ग्रन्थ में न तो स्त्रीमुक्ति का ही समर्थन है और न केवलिभुक्ति का, प्रत्युत अन्त में स्त्री से भी वस्त्रत्याग कराने की इसमें चर्चा है।'' (भगवती-आराधना / शोलापुर / प्रधानसम्पादकीय/ पृ.१)। किन्तु केवल स्त्रीमुक्ति और केवलिभुक्ति का समर्थन न होना इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य नहीं है, अपितु उनका निषेध होना उल्लेखनीय विशेषता है, जो इसके दिगम्बर-ग्रन्थ होने का अखण्ड्य प्रमाण है।

डॉ० सागरमल जी लिखते हैं कि भगवती-आराधना में स्त्रीमुक्ति और केवलिभुक्ति का उल्लेख नहीं है, क्योंकि ''स्त्रीमुक्ति और केवलिभुक्ति के प्रश्न ही ६-७वीं सदी के पूर्व किसी भी श्वेताम्बर-दिगम्बरग्रन्थ में चर्चित नहीं हैं।'' (जै.ध.या.स./पृ.१२३)। यह एक महान् असत्य का प्रचार है। **भगवती-आराधना में एकमात्र अचेललिंग से ही मुक्ति का प्रतिपादन, वस्त्रपात्रादि समस्त परिग्रह के त्याग से ही संयतगुणस्थान की प्राप्ति का कथन तथा केवल पुरुषशरीर को ही संयम की साधना के योग्य**

करने की सामर्थ्य उपलब्ध हुई। कितनी ही शीलवती स्त्रियों को महानदी का जल-प्रवाह भी नहीं डुबा सका, धधकती हुई घोर अग्नि भी नहीं जला सकी तथा सर्प, व्याघ्र आदि भी उनका कुछ नहीं कर सके। कितनी ही स्त्रियाँ सर्वगुणों से सम्पन्न, साधुओं और पुरुषों में श्रेष्ठ, चरमशरीरी पुरुषों को जन्म देनेवाली माताएँ हुई हैं। सब जीव मोह के उदय से कुशील से मलिन होते हैं और मोह का उदय स्त्रीपुरुषों में समानरूप से होता है। अतः पूर्व में जो स्त्रियों के दोषों का वर्णन किया गया है, वह स्त्रीसामान्य की दृष्टि से किया गया है। शीलवती स्त्रियों में उपर्युक्त दोष कैसे हो सकते हैं?''

यहाँ ग्रन्थकार ने स्त्रियों में शील और व्रतों के द्वारा यश, सम्मान, तीर्थंकरादि का मातृत्व तथा कुछ अद्भुत शक्तियों को पाने की सामर्थ्य तो बतलायी है, किन्तु किसी स्त्री ने व्रतों के द्वारा मोक्ष भी प्राप्त किया है, ऐसा कथन नहीं किया, जबकि ज्ञातृधर्मकथांग में मल्लि, मरुदेवी आदि अनेक स्त्रियों के मोक्ष प्राप्त करने का कथन है। इससे स्पष्ट है कि भगवती-आराधनाकार स्त्रियों में मोक्षप्राप्ति की सामर्थ्य स्वीकार नहीं करते। अन्यथा एक गाथा इस आशय की जोड़ देने में क्या दिक्कत थी? प्रसंग तो स्त्रीसामर्थ्य के निरूपण का था ही।

इस प्रकार भगवती-आराधना का कथन है कि वस्त्रादि परिग्रह के त्याग के बिना संयतगुणस्थान संभव नहीं है, महाव्रत संभव नहीं हैं, मोक्षयोग्य शुद्धि संभव नहीं है तथा पुरुषशरीर के अभाव में संयम की साधना असम्भव है। ये इस बात के सुदृढ़ प्रमाण हैं कि भगवती-आराधना में स्त्रीमुक्ति अमान्य की गयी है।

सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री ने भी लिखा है कि ''इस ग्रन्थ में न तो स्त्रीमुक्ति का ही समर्थन है और न केवलिभुक्ति का, प्रत्युत अन्त में स्त्री से भी वस्त्रत्याग कराने की इसमें चर्चा है।'' (भगवती-आराधना / शोलापुर / प्रधानसम्पादकीय/ पृ.१)। किन्तु केवल स्त्रीमुक्ति और केवलिभुक्ति का समर्थन न होना इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य नहीं है, अपितु उनका निषेध होना उल्लेखनीय विशेषता है, जो इसके दिगम्बर-ग्रन्थ होने का अखण्ड्य प्रमाण है।

डॉ० सागरमल जी लिखते हैं कि भगवती-आराधना में स्त्रीमुक्ति और केवलिभुक्ति का उल्लेख नहीं है, क्योंकि ''स्त्रीमुक्ति और केवलिभुक्ति के प्रश्न ही ६-७वीं सदी के पूर्व किसी भी श्वेताम्बर-दिगम्बरग्रन्थ में चर्चित नहीं हैं।'' (जै.ध.या.स./पृ.१२३)। यह एक महान् असत्य का प्रचार है। **भगवती-आराधना में एकमात्र अचेललिंग से ही मुक्ति का प्रतिपादन, वस्त्रपात्रादि समस्त परिग्रह के त्याग से ही संयतगुणस्थान की प्राप्ति का कथन तथा केवल पुरुषशरीर को ही संयम की साधना के योग्य**

**बतलाया जाना, ये इस बात के सबूत हैं कि प्रथमशती ई० की भगवती-आराधना में स्पष्ट शब्दों में स्त्रीमुक्ति का निषेध किया गया है।** केवलिभुक्ति-निषेध के प्रमाण आगे दिये जा रहे हैं।

स्त्रीमुक्ति की मान्यता यापनीयमत का दूसरा मौलिक सिद्धान्त है। उसका निषेध होने से सिद्ध है कि भगवती-आराधना यापनीय-परम्परा का नहीं, अपितु दिगम्बर-परम्परा का ग्रन्थ है।

## ३
## गृहिलिंग-परलिंग-मुक्तिनिषेध

जैसा कि पूर्वोद्धृत प्रमाणों से सिद्ध है, भगवती-आराधना में मुनि के लिए एकमात्र अचेललिंग का विधान है, आपवादिक सचेललिंग का विधान नहीं हैं। उसका विधान केवल श्रावक के लिए है, और वह भी जब उसका त्यागकर पूर्ण अपरिग्रही बन जाता है, तभी मुक्ति का पात्र होता है। भगवती-आराधना में यह भी कहा गया है कि वस्त्रादि-परिग्रहधारी को संयतगुणस्थान की प्राप्ति नहीं होती तथा देशविरत (श्रावक) बालपण्डितमरण करने पर नियम से सौधर्मादिकल्पों में उत्पन्न होता है और अधिक से अधिक सात भवों में निश्चितरूप से मुक्त हो जाता है।[२८] इससे स्पष्ट है कि ग्रन्थकार को गृहस्थों और जैनेतर-लिंगधारियों की मुक्ति स्वीकार्य नहीं है। यह भगवती-आराधना के यापनीयग्रन्थ न होकर दिगम्बरग्रन्थ होने का अन्य प्रमाण है।

## ४
## केवलिभुक्तिनिषेध

भगवती-आराधना में सम्यक्त्व के अतीचारों का वर्णन करते हुए कहा गया है—

**सम्मत्तादीचारा संका कंखा तहेव विदिगिंछा।**
**परदिट्ठीण पसंसा अणायदणसेवणा चेव॥ ४३॥**

**अनुवाद—**"शङ्का, कांक्षा, विचिकित्सा (ग्लानि), परदृष्टियों की प्रशंसा तथा अनायतनों की सेवा, ये सम्यक्त्व के अतीचार हैं।"

---

२८. आलोचिदणिस्सल्लो सघरे चेवारुहितु संथारं।
जदि मरदि देसविरदो तं वुत्तं बालपंडिदयं॥ २०७८॥
वेमाणिएसु कप्पोवगेसु णियमेण तस्स उववादो।
णियमा सिज्झदि उक्कस्सएण वा सत्तमम्मि भवे॥ २०८०॥ भगवती-आराधना।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

यहाँ 'कांक्षा' शब्द की व्याख्या करते हुए अपराजितसूरि लिखते हैं—"कांक्षा गार्द्धर्यम् आसक्तिः, सा च दर्शनस्य मलम्। यद्येवम् आहारे कांक्षा, स्त्री-वस्त्र-गन्ध-माल्यालङ्कारादिषु वाऽसंयतसम्यग्दृष्टेर्विरताविरतस्य वा भवति। **यथा प्रमत्तसंयतस्य परीषहाकुलस्य भक्ष्यपानादिषु कांक्षा सम्भवतीति** सातिचारदर्शनता स्यात्। तथा भव्यानां मुक्तिसुखकांक्षा अस्त्येव। इत्यत्रोच्यते न कांक्षामात्रमतीचारः किन्तु दर्शनाद् व्रताद् दानाद् देवपूजायास्तपसश्च जातेन पुण्येन ममेदं कुलं, रूपं, वित्तं, स्त्रीपुत्रादिकं, शत्रुमर्द्दनं, स्त्रीत्वं, पुंस्त्वं वा सातिशयं स्यादिति कांक्षा इह गृहीता एषा अतिचारो दर्शनस्य।" (वि.टी./ भ.आ./ गा.४३ / पृ.८०)।

**अनुवाद**—"गृद्धि या आसक्ति का नाम कांक्षा है और वह सम्यग्दर्शन का मल है। **प्रश्न**—यदि ऐसा है, तो असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा संयतासंयत (श्रावक) को आहार, स्त्री, वस्त्र, एवं गन्ध, माल्य आदि अलंकारों की आकांक्षा होती है तथा परीषह से व्याकुल प्रमत्तसंयत मुनि को आहार-जल की आकांक्षा होती है, वह भी सम्यग्दर्शन का अतीचार कहलायेगी? और भव्यजीवों को मुक्तिसुख की कांक्षा रहती ही है। **समाधान**—कांक्षामात्र अतीचार नहीं है, अपितु सम्यग्दर्शन, व्रत, दान, देवपूजा तथा तप से उत्पन्न पुण्य के द्वारा मुझे ऐसा कुल, ऐसा रूप, ऐसा धन, ऐसे स्त्रीपुत्रादि प्राप्त हों, शत्रुओं का विनाश हो अथवा सातिशय स्त्रीत्व या पुरुषत्व मिले, ऐसी कांक्षा सम्यग्दर्शन का अतीचार है।"

यहाँ टीकाकार अपराजित सूरि ने प्रमत्तसंयत-गुणस्थान तक के जीवों में क्षुधा-तृषापरीषहजन्य आहारजल की कांक्षा का होना बतलाया है, ऊपर के गुणस्थानवर्ती मुनियों में नहीं। इससे स्पष्ट होता है कि ग्रन्थकार और टीकाकार दोनों केवली भगवान् में क्षुधातृषाजन्य परीषहों का होना नहीं मानते, जिससे उनमें आहार की इच्छा और कवलाहार-ग्रहण का निषेध होता है।

इसके अतिरिक्त भगवती-आराधना (गा.२०९४-२११६ / पृ.८९२-८९७) में केवली भगवान् के वर्णनप्रसंग में केवल उनके विहार का वर्णन है, आहार और नीहार का नहीं। तथा सिद्ध भगवान् की विशेषताएँ बतलाते हुए कहा गया है कि चूँकि सिद्धों को क्षुधादि की बाधाएँ नहीं होतीं और विषयोपभोग के कारणभूत रागादिभाव भी समाप्त हो जाते हैं, इसलिए उन्हें विषयों से प्रयोजन नहीं होता—

**विसएहिं से ण कज्जं जं णत्थि छुदादियाओ बाधाओ।**
**रागादिया य उवभोगहेदुगा णत्थि जं तस्स॥ २१४८॥**

भगवती-आराधना।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इस तरह ग्रन्थकार ने रागादि के अभाव और विषयोपभोग के अभाव में अन्वय-व्यतिरेक सम्बन्ध बतलाया है, जिससे यह सूचित होता है कि यतः केवली भगवान् में रागादिभाव नहीं होते, इसलिए उनमें आहार की इच्छा नहीं होती। इच्छा के अभाव में कवलाहार का प्रश्न नहीं उठता। इस तरह ये केवलिभुक्ति-विरोधी कथन भी भगवती-आराधना को यापनीयमत-विरोधी और दिगम्बरमत-प्रतिपादक सिद्ध करते हैं।

## ५
## परिग्रह की परिभाषा यापनीयमत-विरुद्ध

यद्यपि यापनीयमत में मुनि के लिए सामान्यतः नग्न रहने का ही विधान है, तथापि यदि जननेन्द्रिय अशोभन हो, नग्न रहने में लज्जा आती हो, परीषहजय में असमर्थ हो, भगन्दर आदि रोग हो गया हो, तो इन परिस्थितियों में वस्त्रधारण की अनुमति है, और वस्त्रधारण कर लेने पर मोक्ष में कोई बाधा नहीं मानी गयी है।[२९] इसके अतिरिक्त स्त्रियों, गृहस्थों तथा अन्यलिंगियों (अन्यमतावलम्बियों) की भी मुक्ति स्वीकार की गई है। इसका तात्पर्य यह है कि यापनीयमत सवस्त्रमुक्ति को संभव मानता है, इसलिए उसकी दृष्टि में बाह्यपरिग्रह परिग्रह नहीं है। वह न केवल अपवादमार्गी (स्थविरकल्पी) मुनि एवं आर्यिका के वस्त्रपात्रादि अल्पपरिग्रह को परिग्रह नहीं मानता, बल्कि गृहस्थों और परलिंगियों के बहुपरिग्रह को भी परिग्रह नहीं मानता, क्योंकि उसके रहते हुए भी उनकी मुक्ति स्वीकार करता है। यापनीयमान्य श्वेताम्बरग्रन्थ 'दशवैकालिकसूत्र' का कथन है कि मनुष्य के पास कितना ही बाह्यपरिग्रह हो, यदि उसमें मूर्च्छारूप अन्तरंग परिग्रह नहीं है, तो वह अपरिग्रही है। और बाह्यपरिग्रह रहने पर मूर्च्छारूप अन्तरंगपरिग्रह का होना जरूरी नहीं है।[३०]

किन्तु भगवती-आराधना में बाह्यपरिग्रह और मूर्च्छादिरूप अन्तरंगपरिग्रह, दोनों को परिग्रह कहा गया है तथा बतलाया गया है कि अन्तरंगपरिग्रह होने पर ही बाह्यपरिग्रह

---

२९. क— "आर्यिकाणामागमे अनुज्ञातं वस्त्रं कारणापेक्षया। भिक्षूणां ह्रीमानयोग्यशरीरावयवो दुश्चर्माभिलम्बमानबीजो वा परीषहसहने वा अक्षमः स गृह्णाति।" विजयोदयाटीका/भगवती-आराधना/गा. 'आचेलक्कुद्देसिय' ४२३/पृ.३२४।
ख— पाल्यकीर्ति शाकटायन : स्त्रीनिर्वाणप्रकरण/श्लोक १०-१८।

३०. जं पि वत्थं व पायं वा, कंबलं पायपुंछणं।
तं पि संजमलज्जट्ठा, धारंति परिहरंति अ॥ ६/१९॥
न सो परिग्गहो वुत्तो, नायपुत्तेण ताइणा।
मुच्छा परिग्गहो वुत्तो, इय वुत्तं महेसिणा॥ ६/२०॥ दशवैकालिकसूत्र।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

ग्रहण किया जाता है, अतः जहाँ बाह्यपरिग्रह है वहाँ अन्तरंगपरिग्रह का होना अनिवार्य है। परिग्रहग्रहण देहसुख में राग होने के कारण ही होता है, इसलिए जब तक परिग्रह है, तब तक देहसुख में राग और शरीर में आसक्ति का अस्तित्व सूचित होता है। इतना ही नहीं, बाह्यपरिग्रह के होने पर हिंसारूप असंयम तथा आर्त्तरौद्रध्यान का होना भी अनिवार्य है तथा वस्त्रादिग्रहण से संवर और निर्जरा के परीषहजयरूप साधन (नग्नत्व) का परित्याग हो जाता है, फलस्वरूप देहसुख में राग तथा शरीर में ममत्व के कारण पापकर्मों का आस्रव-बंध होता है। वस्त्रधारण से कामविकार को भी संरक्षण मिलता है।

### ५.१. बाह्यपरिग्रह भी परिग्रह

**भगवती-आराधना** की निम्नलिखित गाथाओं में बाह्य और अन्तरंग दोनों परिग्रहों को परिग्रह कहा गया है और दोनों त्याज्य बतलाये गये हैं—

**अब्भंतरबाहिरए सव्वे गंथे तुमं विवज्जेहि।**
**कद-कारिदाणुमोदेहिं काय-मण-वयण-जोगेहिं॥ ११११॥**

**अनुवाद**—"हे क्षपक! तुम कृत, कारित, अनुमोदना और मन, वचन, काय से सब अन्तरंग और बहिरंग परिग्रह का त्याग करो।"

**मिच्छत्तवेदरागा तहेव हासादिया य छद्दोसा।**
**चत्तारि तह कसाया चउदस अब्भंतरा गंथा॥ ११११२॥**

**अनुवाद**—"मिथ्यात्व, तीन प्रकार का वेदजन्य राग, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा और चार कषायें, ये चौदह अन्तरंग परिग्रह हैं।"

**बाहिरसंगा खेत्तं वत्थुं धण-धण्ण-कुप्प-भंडाणि।**
**दुपय-चउप्पय जाणाणि चेव सयणासणे य तहा॥ ११११३॥**

**अनुवाद**—"खेत, मकान, धन, धान्य, वस्त्र (कुप्य)[३१], वर्तन, द्विपद (दास-दासी), चतुष्पद (गाय-भैंस, हाथी-घोड़े), पालकी (यान) तथा शयन-आसन आदि ये दस बाह्य परिग्रह हैं।"

**जह कुंडओ ण सक्को सोधेदुं तंदुलस्स सतुसस्स।**
**तह जीवस्स ण सक्का मोहमलं संगसत्तस्स॥ ११११४॥**

**अनुवाद**—"जैसे तुषसहित चावल का तुष दूर किये बिना उसके भीतर के मैल को दूर करना संभव नहीं है, वैसे ही जो बाह्यपरिग्रह से आवृत है, उसके अभ्यन्तर कर्ममल का शोधन शक्य नहीं है।"[३२]

---

३१. "कुप्यं वस्त्रम्।" विजयोदयाटीका / भ.आ./ गाथा ११११३/पृ.५७१।

३२. "तुषसहितस्य तन्दुलस्यान्तर्मलं बाह्ये तुषेऽनपनीते यथा शोधयितुमशक्यं तथा बाह्यपरिग्रहमल-संसक्तस्याभ्यन्तरकर्ममलमशक्यं शोधयितुमिति गाथार्थः।" विजयोदयाटीका / भ.आ./गा.११११४।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

### ५.२. परिग्रहग्रहण देहसुख के लिए

**भगवती-आराधना** की अधोलिखित गाथा में बतलाया गया है कि वस्त्रादिपरिग्रह का ग्रहण देहसुख के लिए ही किया जाता है—

**इंदियमयं सरीरं गंथं गेण्हदि य देहसुक्खत्थं।**
**इंदियसुहाभिलासो गंथग्गहणेण तो सिद्धो॥ ११५७॥**

**अनुवाद**—"शरीर इन्द्रियमय है। इन्द्रियमय शरीर के सुख के लिए (ठंड, धूप आदि के क्लेशोत्पादक स्पर्श से बचने के लिए)[३३] ही वस्त्रादि ग्रहण किये जाते हैं। अतः जो वस्त्रग्रहण करता है, उसके भीतर इन्द्रियसुख की आकांक्षा है, यह सिद्ध होता है।"

टीकाकार अपराजित सूरि तो एक कदम आगे जाकर कहते हैं कि वस्त्रालंकार आदि से अपने शरीर को विभूषित कर मनुष्य दूसरे के मन में कामाभिलाष उत्पन्न करता है और उसके अंग-संसर्ग से जनित सुखानुभूति के लिए उसका सेवन करता है।[३४]

उन्होंने यह भी कहा है कि बाह्य द्रव्य का ग्रहण लोभादिपरिणाम के कारण होता है—"**लोभादिपरिणामहेतुकं बाह्यद्रव्यग्रहणम्।**"(वि.टी./भ.आ./गा.१११४)।

अपराजित सूरि ने इस मनोवैज्ञानिक सत्य का भी उद्घाटन किया है कि जो मुनि वस्त्र से शरीर को आच्छादित कर लेता है, उसके मन की शुद्धि (निर्विकारता) का पता नहीं चलता। किन्तु जो नग्न रहता है, उसके शरीर की निर्विकारता से हृदय की निर्विकारता प्रकट हो जाती है।[३५] **जैसे सर्पों से भरे जंगल में विद्या, मंत्र आदि से रहित पुरुष अपनी सुरक्षा के लिए दृढ़ता से प्रयत्नशील रहता है, वैसे ही जो नग्न रहता है, वह इन्द्रियों को वश में करने का पूरा प्रयत्न करता है, अन्यथा शरीर में**

---

३३. "परिग्रहं च चेलप्रावरणादिकमिन्द्रियसुखार्थमेव गृह्णाति वातातपाद्यनभिमतस्पर्शनिषेधाय।" विजयोदयाटीका/भ.आ./गा.११५७।

३४. "आत्मशरीरे वस्त्रालङ्कारादिभिरलङ्कृते पराभिलाषमुत्पाद्य तदङ्गासङ्गजनितप्रीत्यर्थितया अभिमतमापादयति।" विजयोदयाटीका/भ.आ./गा.११५७।

३५. "चेतो विशुद्धिप्रकटनं च गुणोऽचेलतायाम्। कौपीनादिना प्रच्छादयतो भावशुद्धिर्न ज्ञायते। निश्चेलस्य तु निर्विकारदेहतया स्फुटा विरागता।" विजयोदयाटीका/भ.आ./गा. 'आचेलक्कु-द्देसिय' ४२३/पृ.३२२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

**विकार उत्पन्न होने पर लज्जित होने की नौबत आ सकती है।**[३६] वस्तुतः मुनियों का वस्त्रधारण कामविकार को छिपाने और संरक्षण देने का साधन बन जाता है।

### ५.३. बाह्यपरिग्रह देहासक्ति का सूचक

**भगवती-आराधनाकार** आगे कहते हैं कि बाह्यपरिग्रह देह में आदरभाव (आसक्ति या ममत्व) होने का सूचक है—

**जम्हा णिग्गंथो सो वादादव-सीद-दंस-मसयाणं।**
**सहदि य विविधा बाधा तेण सदेहे अणादरदा॥ ११६६॥**

**अनुवाद**—"यतः बाह्य परिग्रह का त्यागी निर्ग्रन्थ हवा, पानी, धूप, शीत, डाँस, मच्छर आदि के विविध कष्टों को सहता है, इससे शरीर में उसकी अनास्था (अनासक्ति, ममत्वाभाव) प्रकट होती है। और शरीर को सारभूत न समझनेवाला समस्त हिंसादि पापों को छोड़ देता है तथा शक्ति को न छिपाते हुए तप का प्रयत्न करता है—**"शरीरे अकृतादरश्च जहात्यशेषं हिंसादिकं, तपसि च स्वशक्त्यनिगूहनेन प्रयतते।"** (वि.टी./भ.आ./गा.११६६)।

### ५.४. बाह्यपरिग्रह मूर्च्छा का निमित्त

आचेलक्यरूप अपरिग्रह महाव्रत की व्याख्या करते हुए अपराजित सूरि लिखते हैं कि परिग्रह छह प्रकार के जीवों की पीड़ा का मूल तथा मूर्च्छा का निमित्त है, इसलिए समस्त परिग्रह का त्याग पाँचवाँ अपरिग्रह महाव्रत है—**"परिग्रहः षड्जीव-निकायपीडाया मूलं मूर्च्छानिमित्तं चेति सकलग्रन्थत्यागो भवति इति पञ्चमं व्रतम्।"** (वि.टी./भ.आ./गा. 'आचेलक्कु' ४२३/पृ.३३१)।

अपराजित सूरि का यह कथन आचार्य कुन्दकुन्द के निम्नलिखित मत का अनुसरण करता है—

**किध तम्हि णत्थि मुच्छा आरंभो वा असंजमो तस्स।**
**तध परदव्वमि रदो कधमप्पाणं पसाधयदि॥ ३/२१॥**
प्रवचनसार।

**अनुवाद**—"बाह्य परिग्रह के रहने पर मुनि मूर्च्छा, आरम्भ और असंयम से कैसे बच सकता है? और जो परद्रव्य में आसक्त है, उसके लिए आत्मा की साधना कैसे संभव है?"

---

३६. "सर्पाकुले वने विद्यामन्त्रादिरहितो यथा पुमान् दृढप्रयत्नो भवति एवमिन्द्रियनियमने अचेलोऽपि प्रयतते। अन्यथा शरीरविकारो लज्जनीयो भवेदिति।" विजयोदयाटीका/भ.आ./गा.४२३/पृ.३२१।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

**जावंतु केइ संगा उदीरया होंति रागदोसाणं।**
**ते वज्जिंतो जिणदि हु रागं दोसं च णिस्संगो॥ १८०॥**

**अनुवाद**—"परिग्रह रागद्वेष की उदीरणा करनेवाला होता है, उसे छोड़ कर निस्संग हुआ मुनि रागद्वेष को निश्चय से जीतता है।"

**जह इंधणेहिं अग्गी वड्ढइ विज्झाइ इंधणेहि विणा।**
**गंथेहिं तह कसाओ वड्ढइ विज्झाइं तेहिं विणा॥ १९०७॥**

**अनुवाद**—"जैसे ईंधन से आग बढ़ती है और ईंधन के बिना बुझ जाती है, वैसे ही परिग्रह से कषाय बढ़ती है और परिग्रह के अभाव में मन्द हो जाती है।"

**जह पत्थरो पडंतो खोभेइ दहे पसण्णमवि पंकं।**
**खोभेइ पसण्णमवि कसायं जीवस्स तह गंथो॥ १९०८॥**

**अनुवाद**—"जैसे तालाब में पत्थर फेंकने से नीचे बैठी हुई कीचड़ ऊपर आ जाती है, वैसे ही परिग्रह से जीव की दबी हुई कषाय उदय में आ जाती है।"

### ५.७. परिग्रही में लेश्या की विशुद्धि असम्भव

**भगवती-आराधना** की नीचे दी हुई गाथा में बतलाया गया है कि जैसे बाहर के तुष (छिलका) रहते हुए चावल की अभ्यन्तर शुद्धि सम्भव नहीं है, वैसे ही परिग्रही जीव में लेश्या की विशुद्धि असम्भव है—

**जध तंडुलस्स कोण्डयसोधी सतुसस्स तीरदि ण कादुं।**
**तह जीवस्स ण सक्का लिस्सासोधी ससंगस्स॥ १९११॥**

### ५.८. वस्त्रादिपरिग्रह से हिंसा

वस्त्रादिपरिग्रह से जीवों की हिंसा होती है, इसका वर्णन **भगवती-आराधना** की निम्नलिखित गाथाओं में है—

**चेलादीया संगा संसज्जंति विविहेहिं जंतूहिं।**
**आगंतुगा वि जंतू हवंति गंथेसु सण्णिहिदा॥ ११५२॥**

**अनुवाद**—"वस्त्रादिपरिग्रह में नाना प्रकार के सम्मूर्च्छन जीव उत्पन्न हो जाते हैं। बाहर से भी आकर जूँ,चींटी, खटमल वगैरह बस जाते हैं। धान्य में कीड़े हो जाते हैं। गुड़ आदि संचय करने पर उसमें भी जीव पैदा हो जाते हैं।" (वि.टी.)।

**आदाणे णिक्खेवे सरेमणे चावि तेसि गंथाणं।**
**उक्कस्सणे वेक्कसणे फालण-पप्फोडणे चेव॥ ११५३॥**

**छेदणबंधणवेढणआदावणधोव्वणादिकिरियासु।**
**संघट्टण-परिदावण-हणणादी होदि जीवाणं॥ ११५४॥**

**अनुवाद**—"वस्त्रादि परिग्रह के ग्रहण करने, रखने, संस्कार करने, बाहर ले जाने, बंधन खोलने, फाड़ने, झाड़ने, छेदने, बाँधने, ढाँकने, सुखाने, धोने, मलने आदि में जीवों का घात होता है।"

**जदि वि विकिंचदि जंतू दोसा ते चेव हुंति से लग्गा।**
**होदि य विकिंचणे वि हु तज्जोणिविओजणा णिययं॥ ११५५॥**

**अनुवाद**—"यदि वस्त्रादि परिग्रह से जन्तुओं को अलग किया जाय, तब भी वे ही दोष लगते हैं, क्योंकि उन जंतुओं को दूर करने पर उनका योनिस्थान (उत्पत्तिस्थान) छूट जाता है और इससे उनका मरण हो जाता है।"

### ५.९. परिग्रह स्वाध्याय में बाधक

**भगवती-आराधना** की अधोवर्णित गाथा दर्शाती है कि परिग्रह स्वाध्याय और ध्यान में बाधक है—

**गंथस्स गहणरक्खणसारवणाणि णियदं करेमाणो।**
**विक्खित्तमणो ज्झाणं उवेदि कह मुक्कसज्झाओ॥ ११५८॥**

**अनुवाद**—"परिग्रह के ग्रहण, रक्षण और उसके सार-सम्हाल में सदा लगे रहनेवाले पुरुष का मन उसी में व्याकुल रहता है, तब स्वाध्याय छूट जाने से शुभध्यान कैसे कर सकता है? "

### ५.१०. परिग्रहत्याग से रागद्वेष का त्याग

परिग्रह त्याग देने से रागद्वेष छूट जाते हैं, इस तथ्य का प्रकाशन **भगवती-आराधना** की इन गाथाओं में हुआ है—

**रागो हवे मणुण्णे गंथे दोसो य होइ अमणुण्णे।**
**गंथच्चाएण पुणो रागद्दोसा हवे चत्ता॥ ११६४॥**

**अनुवाद**—"मनोज्ञ विषय में राग होता है और अमनोज्ञ विषय में द्वेष, अतः परिग्रह का त्याग कर देने से रागद्वेष का त्याग हो जाता है।"

अपराजित सूरि ने भी प्रस्तुत गाथा की व्याख्या में यही बात कही है—"**रागद्वेषयोः कर्मणां मूलयोर्निमित्तं परिग्रहः। परिग्रहत्यागे रागद्वेषौ एव त्यक्तौ भवतः।**" (वि.टी./पृ. ५८६)।

**णिस्संगो चेव सदा कसायसल्लेहणं कुणदि भिक्खू।**
**संगा हू उदीरेंति कसाय अग्गीव कट्ठाणि॥ ११६९॥**

**अनुवाद**—"अपरिग्रही साधु ही सदा कषायरूप परिणामों को कृश करता है, परिग्रही नहीं, क्योंकि जैसे लकड़ी डालने से आग भड़कती है, वैसे ही परिग्रह से कषाय भड़कती है।"

### ५.११. परिग्रहत्याग परीषहजय का उपाय

इसका वर्णन **भगवती-आराधना** में निम्न गाथा द्वारा हुआ है—

**सीदुण्ह-दंसमसयादियाण दिण्णो परीसहाण उरो।**
**सीदादि-णिवारणए गंथे णिययं जहंतेण॥ ११६५॥**

**अनुवाद**—"शीत आदि का निवारण करनेवाले वस्त्रादि परिग्रह को जो नियम से त्याग देता है, वह शीत, उष्ण, दंशमशक आदि के परीषहों [३८] को सहने के लिए अपनी छाती आगे कर देता है।"

### ५.१२. परिग्रहत्याग से ध्यान-अध्ययन निर्विघ्न

परिग्रहरहित साधु के ध्यान और अध्ययन निर्विघ्न सम्पन्न होते हैं, इस तथ्य का प्रकाशन करनेवाली **भगवती-आराधना** की यह गाथा द्रष्टव्य है—

**संगपरिमग्गणादी णिस्संगे णत्थि सव्वविक्खेवा।**
**ज्झाण-ज्झेणाणि तओ तस्स अविग्घेण वच्चंति॥ ११६७॥**

इस गाथा के भाव को अपराजित सूरि ने इस प्रकार स्पष्ट किया है—"इष्ट परिग्रह को खोजने में कष्ट होता है। वह मिल भी जाय, तो उसके स्वामी को ढूँढने में कष्ट होता है। स्वामी मिल जाय, तो उससे याचना करनी पड़ती है। याचना करने पर मिल जाय, तो सन्तोष होता है, न मिले तो मन में दीनता का भाव आता है। मिलने पर उसको लाना, उसका संस्कार करना, उसकी रक्षा करना, इत्यादि कार्यों के कष्ट उठाने पड़ते हैं। इस तरह परिग्रह अनेक आकुलताओं का घर है। परिग्रह का त्याग कर निर्ग्रन्थ बन जाने पर ये सब झंझटें नहीं रहतीं। तब चित्त में किसी प्रकार की आकुलता न होने से निर्ग्रन्थ साधु के ध्यान और स्वाध्याय निर्विघ्न चलते हैं। इस प्रकार इस गाथा के द्वारा कहा गया है कि समस्त तपों में ध्यान और स्वाध्याय प्रधान हैं और परिग्रह का त्याग उनका उपाय है।"[३९]

---

३८. "दुःखोपनिपाते सङ्क्लेशरहितता परीषहजयः।" विजयोदयाटीका / भ.आ. / गा. ११६५।

३९. "परिग्रहान्वेषणादि परिग्रहस्य स्वाभिलषितस्य अस्तित्वगवेषणे क्लेशमस्तीति। तथा तत्स्वामिनां, कोऽस्य स्वामित्वं वा क्वासौ अवतिष्ठते इति। पुनर्याच्ञा। लाभे सन्तोषः, अलाभे दीनमनस्कता।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

### ५.१३. मूर्च्छा, राग, इच्छा, ममत्व एकार्थक

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि 'मूर्च्छा' शब्द में राग, इच्छा, आसक्ति, ममत्व आदि अर्थ गर्भित हैं। कसायपाहुड (भाग १२/ पृ.१८९) में कहा गया है—

**कामो राग णिदाणो छंदो य सुदो य पेज्ज दोसो य।**
**णेहाणुराग आसा इच्छा मुच्छा य गिद्धी य॥ ८९॥**

**सासद पत्थण लालस अविरदि तण्हा य विज्ज जिब्भा य।**
**लोभस्स णामधेज्जा बीसं एगट्ठिया भणिदा॥ ९०॥**

**अनुवाद**—"काम, राग, निदान, छन्द, सुत या स्वत, प्रेय, दोष, स्नेह, अनुराग, आशा, इच्छा, मूर्च्छा, गृद्धि, साशता या शाश्वत, प्रार्थना, लालसा, अविरति, तृष्णा, विद्या और जिह्वा ये बीस लोभ के एकार्थक नाम कहे गये हैं।"

**समवायांग** में भी लोभ के ये ही पर्यायवाची बतलाये गये हैं—"**लोभे इच्छा मुच्छा कंखा गेही तिण्हा भिज्जा अभिज्जा कामासा भोगासा जीवियासा मरणासा नंदी रागे।**" (समवाय ५२)।

अपराजित सूरि ने भी ममत्व (मूर्च्छा) को राग का समानार्थी बतलाया है—"**ममेदं भावो रागः।**" (वि.टी./भ.आ./गा.१११५/पृ.५७२)।

आचार्य कुन्दकुन्द ने इच्छा को परिग्रह कहा है—'**अपरिग्गहो अणिच्छो**' (स. सा./गा.२१०)। अर्थात् जो इच्छारहित है वह अपरिग्रही है। आचार्य अमृतचन्द्र ने इसका स्पष्टीकरण अपनी 'आत्मख्याति' संज्ञक टीका में "**इच्छा परिग्रहः**" (इच्छा परिग्रह है) कहकर किया है।

इस प्रकार राग, इच्छा, लोभ, मूर्च्छा, ममत्व ये एकार्थक शब्द हैं। यह भी कहा जा सकता है कि 'मूर्च्छा' शब्द में ये सभी अर्थ गर्भित हैं।

परिग्रह के उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि भगवती-आराधनाकार ने मूर्च्छा और बाह्यपरिग्रह में अन्वय-व्यतिरेक या अन्योन्याश्रयसम्बन्ध दर्शाया है। अर्थात् मूर्च्छा (राग, देहसुख की इच्छा) होने पर ही जीव बाह्यपरिग्रह ग्रहण करता है और बाह्यपरिग्रह होने पर मूर्च्छा की उत्पत्ति अनिवार्यतः होती है। इसलिए **जहाँ मूर्च्छा है, वहाँ बाह्यपरिग्रह भले न हो, किन्तु जहाँ बाह्यपरिग्रह है, वहाँ मूर्च्छा का अस्तित्व अवश्य होता है।**

---

तदानयनं, तत्संस्करणं, तद्रक्षणम् इत्यादिकम् आदिशब्देन गृहीतम्। सङ्गरहिते न सन्ति सर्वे व्याक्षेपाः। ध्यानमध्ययनं च व्याक्षेपाभावात् चेतसि, अपरिग्रहस्य विघ्नमन्तरेण वर्तते। सर्वेषु तपस्सु प्रधानयोर्ध्यानस्वाध्यायोरुपायो अपरिग्रहता इत्याख्यातमनया गाथया।" वि.टी./भ.आ./गा.११६७।

भगवती-आराधनाकार के इस विवेचन से सिद्ध है कि उनके मतानुसार वस्त्रधारण करनेवाला सदा मूर्च्छाग्रस्त रहता है, अतः वह कभी मुक्त नहीं हो सकता। मुक्ति के लिए वस्त्रादि सम्पूर्ण बाह्यपरिग्रह का त्याग अनिवार्य है। इससे सवस्त्र मुनि, स्त्री, गृहस्थ एवं परलिंगी, सभी की मुक्ति का निषेध हो जाता है। इस प्रकार भगवती-आराधना में परिग्रह की जो परिभाषा की गई है, वह यापनीयमत के सर्वथा विरुद्ध है, अतः यह ग्रन्थ किसी भी हालत में यापनीय कृति नहीं है।

डॉ० सागरमल जी ने भी स्वीकार किया है कि जहाँ मूर्च्छारूप भावपरिग्रह के साथ वस्त्रपात्रादि द्रव्यपरिग्रह का भी पूर्णत्याग मोक्ष के लिए आवश्यक माना गया हो, वहाँ स्त्रीमुक्ति के साथ गृहस्थों और अन्यतैर्थिकों की मुक्ति का निषेध स्वतः हो जाता है। उनके शब्द इस प्रकार हैं—

"किन्तु जब अचेलता को ही एकमात्र मोक्षमार्ग स्वीकार करके मूर्च्छादि भावपरिग्रह के साथ-साथ वस्त्रपात्रादि द्रव्यपरिग्रह का भी पूर्ण त्याग आवश्यक मान लिया गया, तो यह स्वाभाविक ही था कि स्त्रीमुक्ति के निषेध के साथ ही साथ अन्यतैर्थिकों और गृहस्थों की मुक्ति का भी निषेध कर दिया जाय।" (जै.ध.या.स./पृ.४१२)।

"**अब्भंतरबाहिरए सव्वे गंथे तुमं विवज्जेहि**" इस गाथा (११११) से स्पष्ट है कि भगवती-आराधना में मोक्ष के लिए भावपरिग्रह और द्रव्यपरिग्रह दोनों का त्याग आवश्यक बतलाया गया है। अतः इस प्रमाण से तो स्वयं डॉ० सागरमल जी के वचनों के अनुसार भगवती-आराधना में सवस्त्रमुनि, स्त्री, गृहस्थ एवं अन्यतीर्थिक की मुक्ति का निषेध सिद्ध है।

### ५.१४. अपरिग्रह-महाव्रत की वैकल्पिक परिभाषा नहीं

सम्पूर्ण भगवती-आराधना में अपरिग्रहमहाव्रत में उक्त दोनों परिग्रहों का त्याग प्रत्येक मुमुक्षु के लिए आवश्यक बतलाया गया है, स्त्रियों और असमर्थ पुरुषों के लिए अपरिग्रह-महाव्रत की कोई वैकल्पिक परिभाषा नहीं दी गई है।

## ६
## वेदत्रय एवं वेदवैषम्य की स्वीकृति

**षट्खण्डागम** नामक ११वें अध्याय में सप्रमाण दर्शाया गया है कि यापनीयमत में वेदकषाय के पुरुषवेद, स्त्रीवेद, और नपुंसकवेद ये तीन भेद नहीं माने गये हैं, अपितु एक ही वेदसामान्य (कामभाव-सामान्य) माना गया है, जो उक्त मत के अनुसार पुरुष, स्त्री और नपुंसक में समानरूप से रहता है, जैसे एक ही क्रोध-कषाय स्त्री,

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

पुरुष, नपुंसक तीनों में रहती है। इस प्रकार पच्चीस कषायों में से यापनीयमत केवल तेईस कषायों को मान्य करता है। वेद के तीन भेद न मानने से वेदवैषम्य भी यापनीयमत में अमान्य किया गया है। यह दिगम्बरमत से यापनीयमत का एक महत्त्वपूर्ण भेद है। किन्तु **भगवती-आराधना** में तीनों वेद स्वीकार किये गये हैं। देखिए—

**मिच्छत्तवेदरागा तहेव हासादिया य छद्दोसा।**
**चत्तारि तह कसाया चउदस अब्भंतरा गंथा॥ ११११॥**

**अनुवाद**—"मिथ्यात्व, तीन प्रकार का वेदजनित राग, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा और चार कषाय ये चौदह अन्तरंग परिग्रह हैं।"

इसकी व्याख्या में अपराजित सूरि कहते हैं—"वेद-शब्द से स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद नाम के कर्मों का ग्रहण किया गया है। इनके उदय से स्त्री-पुरुष आदि में जो पारस्परिक आकर्षण उत्पन्न होता है, वह राग है। स्त्रियों का पुरुषों में राग होता है, पुरुषों का स्त्रियों में और नपुंसकों का दोनों में।"[४०]

कषायों के क्षयक्रम का वर्णन करते हुए शिवार्य **भगवती-आराधना** में कहते हैं—

**तत्तो णवुंसगित्थीवेदं हासादिछक्कपुंवेदं।**
**कोधं माणं मायं लोभं च खवेदि सो कमसो॥ २०९१॥**

**अनुवाद**—"क्षपक नवम गुणस्थान में नपुंसकवेद और स्त्रीवेद तथा हास्यादि छह नोकषायों को पुरुषवेद में क्षेपण करके नष्ट करता है, पुरुषवेद का क्रोधसंज्वलन में क्षेपण करके क्षय करता है। इसी प्रकार क्रोधसंज्वलन का मानसंज्वलन में, मानसंज्वलन का मायासंज्वलन में और मायासंज्वलन का लोभसंज्वलन में क्षेपण करके क्षय करता है। अन्त में बादर कृष्टि के द्वारा लोभसंज्वलन को कृश करता है, जिससे सूक्ष्मलोभसंज्वलन कषाय शेष रहती है।"

यहाँ तीनों वेदों का अस्तित्व स्वीकार किया गया है। शिवार्य ने यह भी कहा है कि पुरुषों के ब्रह्मचर्य को दूषित करने वाले जो दोष स्त्रियों में होते हैं, वैसे दोष कुछ नीच पुरुषों में भी होते हैं—

**महिलाणं जे दोसा ते पुरिसाणं पि हुंति णीयाणं।**
**तत्तो अहियदरा वा तेसिं बलसत्तिजुत्ताणं॥ ९८७॥**

---

४०."वेदशब्देन स्त्रीपुन्नपुंसकवेदाख्यानां कर्मणां ग्रहणम्। तज्जनिताः स्त्र्यादीनामन्योन्यविषयरागाः। स्त्रियः पुंसि रागः, पुंसो युवतिषु, नपुंसकस्योभयत्र।" विजयोदयाटीका / भ.आ. / गा.१११२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

**अनुवाद**—"स्त्रियों में जो दोष होते हैं, वे नीच पुरुषों में भी होते हैं अथवा मनुष्यों में जो बल और शक्ति से युक्त हैं, उनमें स्त्रियों से भी अधिक दोष होते हैं।"

इसका भावार्थ बतलाते हुए पं० सदासुखदास जी लिखते हैं—"कितने पुरुषनि का तो परिणाम ही नपुंसकनितैं अधिक नीच है, नित्य ही भण्डवचन बोलनेवाले, अतिहास्य स्वभाव के धारक हैं, रात्रिदिन काम की तीव्रताकूं धारे हैं। तथा पुरुषपणा में हू कितने ऐसे हैं, जे स्त्री के से आभरण, केशभार, दन्तनि के मसी, कज्जल-कुंकुमादिक, हावभाव, विलास-विभ्रम, गान, स्पर्शन, वचनकूं धारण करिके अर आपकूं धन्य माने हैं। स्त्रीनि की नाईं अंग की चेष्टा, केशनि का संस्कार करे हैं, ते पुरुषपर्याय में हू नीच आचरण के धारक, तिनि की संगति कूं व्यभिचारिणी स्त्री का संग की नाईं त्याग करि उच्च आचरण करना योग्य है।"[४१]

इसका अभिप्राय यह है कि किसी-किसी पुरुष में भी पुरुषों के साथ रमण करने की इच्छा होती है। अतः साधुओं को ब्रह्मचर्यव्रत की रक्षा करने हेतु स्त्रियों के समान स्त्रैण पुरुषों से भी दूर रहने के लिए भगवती-आराधनाकार ने सावधान किया है। यह भगवती-आराधनाकार द्वारा वैदवैषम्य की स्वीकृति है। भगवती-आराधना में वेदत्रय और वेदवैषम्य की स्वीकृति यापनीयमत के विरुद्ध है। कोई आचार्य अपने ही मत का विरोध करनेवाला ग्रन्थ नहीं रच सकता। अतः सिद्ध है कि 'भगवती-आराधना' दिगम्बराचार्य की ही कृति है।

## ७

## मायाचार के परिणाम के विषय में मतभेद

श्वेताम्बर आगम **ज्ञातृधर्मकथाङ्ग** के अनुसार मल्ली तीर्थंकर के उपान्त्य पूर्वभव का जीव राजकुमार महाबल अपने छह मित्रों के साथ अनगार हुआ और सातों मित्रों ने यह प्रतिज्ञा की, कि वे एक ही बराबर तप करेंगे, कोई ज्यादा, कोई कम नहीं। किन्तु प्रतिज्ञा करके महाबल मित्रों से छिपाकर उनसे अधिक तप करने लगा। इस मायाचार के फलस्वरूप उसने स्त्रीगोत्रनामकर्म का बन्ध किया।[४२] बीस भावनाओं के

---

४१. भगवती आराधना/प्रकाशक-विशम्बरदास महावीरप्रसाद जैन सर्राफ, देहली/ गाथा ९९९/ पृष्ठ ३८८ (जैन संस्कृति संरक्षक संघ शोलापुर एवं हीरालाल खुशालचंद दोशी फलटण द्वारा प्रकाशित संस्करणों में इस गाथा का क्रमांक ९८७ है)।

४२. "तए णं से महब्बले अणगारे इमेण कारणेणं इत्थियणामगोयं कम्मं निव्वत्तिंसु ---।" ज्ञाताधर्मकथाङ्ग / अध्याय ८/ पृष्ठ २१७ / आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, १९८१।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

द्वारा उसने तीर्थंकर-प्रकृति का भी बन्ध किया।[४३] किन्तु बाँधे गये स्त्रीगोत्रनामकर्म का स्त्रीपर्यायरूप फल उसे दूसरे भव में नहीं मिला, अपितु उसने जयन्त नामक अनुत्तर विमान में देवपर्याय प्राप्त कर ली।[४४] उस देवपर्याय से च्युत होने पर तीर्थंकर मल्लीकुमारी के रूप में उसने स्त्रीपर्याय प्राप्त की और मुक्त हो गया। इस प्रकार मायाचार का उसे कोई दुष्परिणाम नहीं भोगना पड़ा। न तो वह रत्नत्रय से च्युत हुआ, न तीर्थंकरप्रकृति के बन्ध से वंचित हुआ, न आगामी भव में उसने दु:खमय स्त्रीपर्याय प्राप्त की। जब तीसरे भव में वह स्त्री हुआ, तब स्त्री शरीर के साथ उसे अत्यन्त महिमामयी तीर्थंकरपर्याय प्राप्त हुई, जिसमें दु:ख का नामोनिशाँ नहीं था, बल्कि मोक्ष की सम्पूर्ण सामग्री उपलब्ध थी। महाबल की पर्याय में मायाशल्य रहते हुए भी वह व्रती बना रहा, **'नि:शल्यो व्रती'** (त.सू.७ / १८) का नियम उस पर लागू नहीं हुआ।

किन्तु, भगवती-आराधना में पुष्पदन्ता नामक आर्यिका की कथा है। वह मायाचार करती है, तो रत्नत्रय से भ्रष्ट हो जाती है और मरकर दूसरे ही भव में सागरदत्त नाम के वणिक के यहाँ महादुर्गन्धदेहवाली पूतिमुखी नाम की दासी बनती है।[४५] मायाचार के परिणाम के विषय में यह मतभेद भगवती-आराधना को यापनीयमान्य श्वेताम्बर-आगमों का प्रतिपक्षी सिद्ध करता है।

## ८

## गुणस्थानानुसार कर्मक्षय का निरूपण

भगवती-आराधना के यापनीयग्रन्थ न होने का एक अन्य प्रमाण है उसमें गुणस्थान-सिद्धान्त की उपलब्धि। षट्खण्डागम के अध्याय में सप्रमाण दर्शाया गया है कि यह सिद्धान्त श्वेताम्बरों और यापनीयों को मान्य नहीं है, क्योंकि यह उनके सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति और परलिंगिमुक्ति के सिद्धान्तों के विरुद्ध है। गुणस्थान-सिद्धान्त के अनुसार गुणस्थानक्रम से ही कर्मों का क्रमिक क्षय होता है और चौदहवें गुणस्थान के अन्त में सम्पूर्ण कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं।

---

४३. "इमेहि य वीसाएहि य कारणेहि आसेवियबहुलीकएहिं तित्थयरनामगोयं कम्मं निव्वत्तिंसु तं जहा...।" वही / अध्याय ८ / पृष्ठ २१७।

४४. "तएं णं ते महब्बलपामोक्खा सत्त अणगारा---जयंते विमाणे देवत्ताए उववन्ना।" वही / अध्याय ८ / पृष्ठ २२०।

४५. पब्भट्ठबोधिलाभा मायासल्लेण आसि पूदिमुही।
दासी सागरदत्तस्स पुप्फदंता हु विरदा वि॥ १२८०॥ भगवती-आराधना।
इसकी कथा 'बृहत्कथाकोश' में क्रमांक ११० पर है।

देशविरत-गुणस्थानवर्ती श्रावक के बालपण्डितमरण का लक्षण और फल बतलाते हुए **भगवती-आराधनाकार** कहते हैं—

**आलोचिदणिसल्लो सघरे-चेवारुहितु संथारं।**
**जदि मरदि देसविरदो तं वुत्तं बालपंडिदयं॥ २०७८॥**

**वेमाणिएसु कप्पोवगेसु णियमेण तस्स उववादो।**
**णियमा सिज्झदि उक्कस्सएण वा सत्तमम्मि भवे॥ २०८०॥**

**अनुवाद**—"यदि देशविरत (श्रावक) विधिपूर्वक आलोचना करके, माया, मिथ्यात्व और निदान शल्यों से मुक्त होकर अपने घर में संस्तर पर आरूढ़ होकर मरता है, तो उसे बालपण्डितमरण कहते हैं। (२०७८)। वह श्रावक मरकर नियम से सौधर्मादि कल्पोपन्न वैमानिक देवों में उत्पन्न होता है और अधिक से अधिक सात भवों में निश्चितरूप से मुक्त हो जाता है।" (२०८०)।

इस कथन से स्पष्ट है कि गृहिलिंग से मुक्ति नहीं होती। गृहस्थ यदि बद्धायुष्क नहीं है, तो अपने अणुव्रतादि के द्वारा नियम से देवगति ही प्राप्त करता है। इस तरह गुणस्थानसिद्धान्त मिथ्यादृष्टि-गुणस्थान से लेकर संयतासंयत (पंचम) गुणस्थान तक के जीवों की मुक्ति का निषेधक है। इससे अन्यलिंगी की भी मुक्ति का निषेध हो जाता है, क्योंकि वह मिथ्यादृष्टि-गुणस्थान में स्थित होता है।[४६] ग्रन्थकार **भगवती-आराधना** में आगे कहते हैं—

**साहू जहुत्तचारी वट्टंतो अप्पमत्तकालम्मि।**
**ज्झाणं उवेदि धम्मं पविट्ठुकामो खवगसेढिं॥ २०८२॥**

**संजोयणाकसाए खवेदि झाणेण तेण सो पढमं।**
**मिच्छत्तं सम्मिस्सं कमेण सम्मत्तमवि य तदो॥ २०८६॥**

**अनुवाद**—"शास्त्रोक्तमार्ग पर चलता हुआ साधु क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ होने की इच्छा से अप्रमत्तगुणस्थान में धर्मध्यान करता है। धर्मध्यान से वह पहले अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ का क्षय करता है, तत्पश्चात् क्रमशः मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृतियों का। इस प्रकार सात प्रकृतियों का क्षय कर क्षायिक सम्यग्दृष्टि

---

४६. एक्कं पि अक्खरं जो अरोचमाणो मरेज्ज जिणदिट्ठं।
सो वि कुजोणि-णिवुड्ढो किं पुण सव्वं अरोचंतो॥ ६१ ॥ भगवती-आराधना।
पदमक्खरं च एक्कं पि जो ण रोचेदि सुत्तणिद्दिट्ठं।
सेसं रोचंतो वि हु मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो॥ ३८ ॥ भगवती-आराधना।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

होता है। उसके बाद क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ होने के लिए अप्रमत्तगुणस्थान में अधःप्रवृत्तकरण करता है।''[४७]

इस कथन से स्पष्ट होता है कि चौथे से लेकर सातवें गुणस्थान तक किसी भी गुणस्थान में केवल दर्शनमोहनीय की उक्त तीन प्रकृतियों और चारित्रमोहनीय की अनन्तानुबन्धी क्रोधादि चार प्रकृतियों का क्षय हो सकता है, अन्य किसी भी प्रकृति का नहीं। चारित्रमोहनीय की २१ प्रकृतियाँ और शेष सात कर्मों की सभी प्रकृतियाँ विद्यमान रहती हैं। इससे भी सिद्ध है कि गुणस्थानसिद्धान्त के अनुसार गृहिलिंगी एवं अन्यलिंगी की मुक्ति नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त यहाँ केवल साधु को ही अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती एवं क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ होने का अभिलाषी कहा गया है, आर्यिका को नहीं। आचारांग और कल्पसूत्र आदि श्वेताम्बर आगमों में तो भिक्खु के साथ भिक्खुणी[४८] और निर्ग्रन्थ के साथ निर्ग्रन्थी[४९] दोनों का उल्लेख करके ही समान आचारनियमों के पालन का उपदेश दिया गया है। भगवती-आराधना के उपर्युक्त प्रसंग में तथा अन्यत्र ऐसा नहीं किया गया है। इससे स्पष्ट है कि भगवती-आराधनाकार को स्त्रीमुक्ति मान्य नहीं है। इस तरह गुणस्थानसिद्धान्त स्त्रीमुक्ति का भी निषेधक है।

आगे के गुणस्थानों में कर्मप्रकृतियों के क्षय का क्रम बतलाते हुए **भगवती-आराधनाकार** कहते हैं—

**अध खवयसेढिमधिगम्म कुणइ साधू अपुव्वकरणं सो।**
**होइ तमपुव्वकरणं कयाइ अप्पत्तपुव्वंति॥ २०८७॥**

**अणिवित्तिकरणणामं णवमं गुणठाणयं च अधिगम्म।**
**णिद्दाणिद्दा पयलापयला तध थीणगिद्धिं च॥ २०८८॥**

**णिरयगदियाणुपुव्विं णिरयगदिं थावरं च सुहुमं च।**
**साधारणादवुज्जोवतिरयगदिं आणुपुव्वीए॥ २०८९॥**

**इग-विग-तिग-चतुरिंदियणामाइं तध तिरिक्खगदिणामं।**
**खवयित्ता मज्झिल्ले खवेदि सो अट्ठवि कसाए॥ २०९०॥**

---

४७. ''क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा क्षपकश्रेण्यधिरोहणाभिमुखोऽधःप्रवृत्तकरणमप्रमत्तस्थाने प्रतिपद्य---।'' विजयोदयाटीका / भ.आ. / गा. २०८६।

४८. ''से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं जाव---।'' आचारांग २/१/१ / २-९।

४९. ''वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा ।'' कल्पसूत्र / सूत्र २६२-२८९।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

तत्तो णवुंसगित्थीवेदं हासादिछक्कपुंवेदं।
कोधं माणं मायं लोभं च खवेदि सो कमसो॥ २०९१॥

अध लोभसुहुमकिट्टिं वेदंतो सुहुमसंपरायत्तं।
पावदि पावदि य तधा तण्णामं संजमं सुद्धं॥ २०९२॥

तो सो खीणकसाओ जायदि खीणासु लोभकिट्टीसु।
एयत्तवितक्कावीचारं तो ज्झादि सो ज्झाणं॥ २०९३॥

झाणेण य तेण अधक्खादेण य संजमेण घादेदि।
सेसा घादिकम्माणि समं अवरंजणाणि तदो॥ २०९४॥

णिद्दापचला य दुवे दुचरिमसमयम्मि तस्स खीयंति।
सेसाणि घादिकम्माणि चरिमसमयम्मि खीयंति॥ २०९६॥

तत्तो णंतरसमए उप्पज्जदि सव्वपज्जयणिबंधं।
केवलणाणं सुद्धं तध केवलदंसणं चेव॥ २०९७॥

## अनुवाद

"अध:प्रवृत्तकरण द्वारा क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ होकर साधु अपूर्वकरण करता है। उसे अपूर्वकरण इसलिए कहते हैं कि उस साधु ने इस प्रकार के परिणाम कभी भी नीचे के गुणस्थानों में प्राप्त नहीं किये थे।" (२०८७)।

"तत्पश्चात् वह साधु अनिवृत्तिकरण नामक नवम गुणस्थान को प्राप्त कर निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकगति, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, आतप, उद्योत, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति और तिर्यग्गति, इन सोलह कर्मप्रकृतियों का क्षय करके मध्य की आठ कषायों (अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ) का क्षय करता है।" (२०८८-२०९०)।

"फिर उसी नवम गुणस्थान में क्रमश: नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद और संज्वलन-क्रोध-मान-माया का क्षय करता है। अन्त में संज्वलन-लोभ का क्षय करता है।" (२०९१)।

(क्षय का क्रम इस प्रकार है—पहले नपुंसकवेद और स्त्रीवेद का क्रमश: नाश करता है, फिर हास्यादि छह नोकषायों को पुरुषवेद में क्षेपण करके नष्ट करता है। पुरुषवेद को क्रोध-संज्वलन में, क्रोध-संज्वलन को मान-संज्वलन में, मान-संज्वलन को माया-संज्वलन में और माया-संज्वलन को लोभ-संज्वलन में क्षेपण करके क्षीण करता है। अंत में बादरकृष्टि के द्वारा लोभ-संज्वलन को कृश करता है, जिससे सूक्ष्म लोभ-संज्वलन कषाय शेष रहती है। स.सि./१०/१)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

होता है। उसके बाद क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ होने के लिए अप्रमत्तगुणस्थान में अध:प्रवृत्त-करण करता है।''[४७]

इस कथन से स्पष्ट होता है कि चौथे से लेकर सातवें गुणस्थान तक किसी भी गुणस्थान में केवल दर्शनमोहनीय की उक्त तीन प्रकृतियों और चारित्रमोहनीय की अनन्तानुबन्धी क्रोधादि चार प्रकृतियों का क्षय हो सकता है, अन्य किसी भी प्रकृति का नहीं। चारित्रमोहनीय की २१ प्रकृतियाँ और शेष सात कर्मों की सभी प्रकृतियाँ विद्यमान रहती हैं। इससे भी सिद्ध है कि गुणस्थानसिद्धान्त के अनुसार गृहिलिंगी एवं अन्यलिंगी की मुक्ति नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त यहाँ केवल साधु को ही अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती एवं क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ होने का अभिलाषी कहा गया है, आर्यिका को नहीं। आचारांग और कल्पसूत्र आदि श्वेताम्बर आगमों में तो भिक्खु के साथ भिक्खुणी[४८] और निर्ग्रन्थ के साथ निर्ग्रन्थी[४९] दोनों का उल्लेख करके ही समान आचारनियमों के पालन का उपदेश दिया गया है। भगवती-आराधना के उपर्युक्त प्रसंग में तथा अन्यत्र ऐसा नहीं किया गया है। इससे स्पष्ट है कि भगवती-आराधनाकार को स्त्रीमुक्ति मान्य नहीं है। इस तरह गुणस्थानसिद्धान्त स्त्रीमुक्ति का भी निषेधक है।

आगे के गुणस्थानों में कर्मप्रकृतियों के क्षय का क्रम बतलाते हुए **भगवती-आराधनाकार** कहते हैं—

**अध खवयसेढिमधिगम्म कुणइ साधू अपुव्वकरणं सो।**
**होइ तमपुव्वकरणं कयाइ अप्पत्तपुव्वंति॥ २०८७॥**

**अणिवित्तिकरणणामं णवमं गुणठाणयं च अधिगम्म।**
**णिद्दाणिद्दा पयलापयला तध थीणगिद्धिं च॥ २०८८॥**

**णिरयगदियाणुपुव्विं णिरयगदिं थावरं च सुहुमं च।**
**साधारणादवुज्जोवतिरयगदिं आणुपुव्वीए॥ २०८९॥**

**इग-विग-तिग-चतुरिंदियणामाइं तध तिरिक्खगदिणामं।**
**खवयित्ता मज्झिल्ले खवेदि सो अट्ठवि कसाए॥ २०९०॥**

---

४७. ''क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा क्षपकश्रेण्यधिरोहणाभिमुखोऽध:प्रवृत्तकरणमप्रमत्तस्थाने प्रतिपद्य---।'' विजयोदयाटीका / भ.आ. / गा. २०८६।

४८. ''से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं जाव---।'' आचारांग २/१/१ / २-९।

४९. ''वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा ।'' कल्पसूत्र / सूत्र २६२-२८९।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

तत्तो णवुंसगित्थीवेदं हासादिछक्कपुंवेदं।
कोधं माणं मायं लोभं च खवेदि सो कमसो॥ २०९१॥

अध लोभसुहुमकिट्टिं वेदंतो सुहुमसंपरायत्तं।
पावदि पावदि य तधा तण्णामं संजमं सुद्धं॥ २०९२॥

तो सो खीणकसाओ जायदि खीणासु लोभकिट्टीसु।
एयत्तवितक्कावीचारं तो ज्झादि सो ज्झाणं॥ २०९३॥

झाणेण य तेण अधक्खादेण य संजमेण घादेदि।
सेसा घादिकम्माणि समं अवरंजणाणि तदो॥ २०९४॥

णिद्दापचला य दुवे दुचरिमसमयम्मि तस्स खीयंति।
सेसाणि घादिकम्माणि चरिमसमयम्मि खीयंति॥ २०९६॥

तत्तो णंतरसमए उप्पज्जदि सव्वपज्जयणिबंधं।
केवलणाणं सुद्धं तध केवलदंसणं चेव॥ २०९७॥

## अनुवाद

"अध:प्रवृत्तकरण द्वारा क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ होकर साधु अपूर्वकरण करता है। उसे अपूर्वकरण इसलिए कहते हैं कि उस साधु ने इस प्रकार के परिणाम कभी भी नीचे के गुणस्थानों में प्राप्त नहीं किये थे।" (२०८७)।

"तत्पश्चात् वह साधु अनिवृत्तिकरण नामक नवम गुणस्थान को प्राप्त कर निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकगति, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, आतप, उद्योत, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति और तिर्यग्गति, इन सोलह कर्मप्रकृतियों का क्षय करके मध्य की आठ कषायों (अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ) का क्षय करता है।" (२०८८-२०९०)।

"फिर उसी नवम गुणस्थान में क्रमशः नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद और संज्वलन-क्रोध-मान-माया का क्षय करता है। अन्त में संज्वलन-लोभ का क्षय करता है।" (२०९१)।

(क्षय का क्रम इस प्रकार है—पहले नपुंसकवेद और स्त्रीवेद का क्रमशः नाश करता है, फिर हास्यादि छह नोकषायों को पुरुषवेद में क्षेपण करके नष्ट करता है। पुरुषवेद को क्रोध-संज्वलन में, क्रोध-संज्वलन को मान-संज्वलन में, मान-संज्वलन को माया-संज्वलन में और माया-संज्वलन को लोभ-संज्वलन में क्षेपण करके क्षीण करता है। अंत में बादरकृष्टि के द्वारा लोभ-संज्वलन को कृश करता है, जिससे सूक्ष्म लोभ-संज्वलन कषाय शेष रहती है। स.सि./१०/१)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"तत्पश्चात् सूक्ष्मकृष्टिरूप लोभ का वेदन करता हुआ सूक्ष्मसाम्पराय नामक दसवें गुणस्थान को प्राप्त होता है, जहाँ उसे सूक्ष्मसाम्पराय-संयम की उपलब्धि होती है। दसवें गुणस्थान के अन्त में सूक्ष्म लोभकृष्टि का क्षय होता है और साधु क्षीणकषायनामक १२वें गुणस्थान में पहुँचता है। वहाँ एकत्ववितर्कावीचार नामक शुक्लध्यान और यथाख्यातचारित्र के द्वारा शेष घातिकर्मों का क्षय करता है, जो जीव के अन्यथाभाव में कारण होते हैं।"[५०] क्षीणकषाय गुणस्थान के उपान्त्य समय में निद्रा और प्रचला का विनाश होता है तथा अन्तिम समय में शेष घाती कर्मों (पाँच ज्ञानावरणों, चार दर्शनावरणों और पाँच अन्तराय कर्मों) का। उसी समय शुद्धकेवलज्ञान और शुद्धकेवलदर्शन उत्पन्न होते हैं।" (२०९२-२०९७)।

इसके बाद उत्तर गाथाओं में अघातीकर्मों के क्षय का क्रम बतलाते हुए भगवती-आराधनाकार लिखते हैं—

"केवलज्ञान की प्राप्ति के अनन्तर जब तक शेष कर्मों की तथा अनुभूयमान मनुष्यायु की समाप्ति नहीं होती, तब तक केवलज्ञानी विहार करते रहते हैं। वे चारित्र को बढ़ाते हुए अधिक से अधिक कुछ कम एक पूर्वकोटि तक और कम से कम अन्तर्मुहूर्तमात्र काल तक विहार करते हैं। फिर अघाती कर्मों को नष्ट करने के लिए सत्यवचनयोग, अनुभयवचनयोग, सत्यमनोयोग, अनुभयमनोयोग, औदारिक-काययोग, औदारिक-मिश्रकाययोग तथा कार्मण-काययोग का निग्रह प्रारंभ करते हैं। उत्कर्ष से छह मास आयु शेष रहने पर जो केवलज्ञानी होते हैं, वे समुद्घात अवश्य करते हैं, शेष केवलज्ञानी करते भी हैं, नहीं भी करते हैं। जिनके नामकर्म, गोत्रकर्म और वेदनीयकर्म की स्थिति आयुकर्म के समान होती है, वे सयोगकेवली जिन समुद्घात किये बिना शैलेशी अवस्था को प्राप्त होते हैं। किन्तु जिनके आयुकर्म की स्थिति कम होती है और नाम, गोत्र तथा वेदनीय कर्मों की स्थिति अधिक होती है, वे समुद्घात करके ही शैलेशी अवस्था प्राप्त करते हैं, अर्थात् अयोगकेवली होते हैं। वे अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहने पर सयोगकेवली-अवस्था में चारों कर्मों की स्थिति समान करने के लिए समुद्घात करते हैं।" (भ.आ./गा.२१०१-२१०६)।

"जैसे गीला वस्त्र फैला देने पर शीघ्र सूख जाता है, उतनी जल्दी इकट्ठा रखा हुआ नहीं सूखता, कर्मों की भी दशा वैसी ही है। आत्मप्रदेशों के फैलाव से सम्बद्ध-कर्म की स्थिति बिना भोगे घट जाती है। समुद्घात से स्थितिबन्ध का कारणभूत स्नेह गुण नष्ट हो जाता है, जिसके फलस्वरूप शेष कर्मों की स्थिति घट जाती है। इस प्रकार नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मों की स्थिति आयु के समान करके मुक्ति की

५०."अवरंजणाणि जीवस्यान्यथाभावकारणानि।" विजयोदयाटीका / भ.आ. / गा.२०९४।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

ओर बढ़नेवाले सयोगकेवली जिन योगों का निरोध करते हैं। योगनिरोध का क्रम इस प्रकार है—स्थूलकाययोग में स्थित होकर बादरवचनयोग और बादरमनोयोग को रोकते हैं और सूक्ष्मकाययोग में स्थित होकर स्थूलकाययोग को रोकते हैं। इसी प्रकार सूक्ष्मकाययोग के द्वारा सूक्ष्म मनोयोग और सूक्ष्मवचनयोग को रोककर सयोगकेवली जिन सूक्ष्मकाययोग में स्थित होते हैं। सूक्ष्मलेश्या के द्वारा सूक्ष्मकाययोग से वे सातावेदनीय कर्म का बन्ध करते हैं तथा सूक्ष्मक्रिय नामक तीसरे शुक्लध्यान को ध्याते हैं। उस शुक्लध्यान के द्वारा सूक्ष्मकाययोग का निरोध करके वे शैलेशी अवस्था प्राप्त कर लेते हैं। तब आत्मा के प्रदेशों के निश्चल हो जाने से उन्हें कर्मबन्ध नहीं होता। उस समय अयोगकेवली होकर वे मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, पर्याप्ति, आदेय, सुभग, यश:कीर्ति, साता या असातावेदनीय, त्रस, बादर, उच्चगोत्र और मनुष्यायु, इन ग्यारह कर्मप्रकृतियों के उदय का भोग करते हैं। यदि वे तीर्थंकर होते हैं तो तीर्थंकरप्रकृति-सहित बारह प्रकृतियों का अनुभव करते हैं।'' (भ.आ./ गा.२१०७-१६)।

''तत्पश्चात् अयोगकेवली जिन परम-औदारिक, तैजस और कार्मण इन तीन शरीरों के बन्धन से छूटने के लिए समुच्छिन्नक्रिय-अप्रतिपाती नामक चतुर्थ शुक्लध्यान करते हैं। इस ध्यान का काल 'अ इ उ ऋ ऌ' इन पाँच ह्रस्व मात्राओं के उच्चारणकाल के बराबर होता है। इसके द्वारा वे अयोगकेवली गुणस्थान के उपान्त्य समय में बिना उदीरणा के ७२ कर्मप्रकृतियों का क्षय कर देते हैं और अन्तिम समय में तीर्थंकर केवली १२ प्रकृतियों का तथा सामान्य केवली ११ प्रकृतियों का क्षय करते हैं। नामकर्म का क्षय होने से तैजस-शरीरबन्ध का भी क्षय हो जाता है, और आयुकर्म का क्षय होने से औदारिक-शरीरबन्ध का भी क्षय हो जाता है। इस प्रकार बन्धन से मुक्त हुआ जीव बन्धनमुक्त एरण्ड-बीज के समान ऊपर की ओर जाता है।'' (भ.आ./ गा.२११७-२१)।

इस विस्तृत वर्णन में भगवती-आराधनाकार ने स्पष्ट किया है कि कर्मों का क्षय गुणस्थानक्रम से होता है और सम्पूर्ण कर्म अयोगकेवली नामक चौदहवें गुणस्थान के अन्त में क्षीण होते हैं। अन्यलिंगियों के मिथ्यादृष्टिगुणस्थान ही होता है और गृहस्थों के मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर संयतासंयत तक पाँच गुणस्थान होते हैं। तथा पुरुष ही संयतगुणस्थान को प्राप्त होता है, स्त्री नहीं। इस तरह गुणस्थानसिद्धान्त अन्यलिंगियों, गृहिलिंगियों, सवस्त्रमुनियों तथा स्त्रियों की मुक्ति का निषेधक है, जो यापनीयमत के विरुद्ध है। भगवती-आराधना में इस यापनीयमत-विरोधी गुणस्थान-सिद्धान्त की उप-स्थिति से सिद्ध है कि यह यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ नहीं है, अपितु दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

९

## मूलगुणों और उत्तरगुणों का विधान

भगवती-आराधना में मुनि के लिए मूलगुणों और उत्तरगुणों का विधान किया गया है। यथा—

**जदि मूलगुणे उत्तरगुणे य कस्सइ विराहणा होज्ज।**
**पढमे विदिए तदिए चउत्थए पंचमे च वदे॥ ५८६॥**

इसकी टीका करते हुए अपराजित सूरि ने मूलगुणों में चारित्र अर्थात् अहिंसादि महाव्रतों का एवं उत्तरगुणों में अनशनादि तपों का समावेश किया है, जैसा कि उनके निम्नलिखित वचनों से सूचित होता है—

**"यदि मूलगुणे उत्तरगुणे च कस्यचिद्विद्यते मूलगुणे, चारित्रे, तपसि वा अनशनादावुत्तरगुणे अतिचारो भवेत् अहिंसादिके व्रते।"** (वि.टी./गा.५८६)।

मूलगुणों और उत्तरगुणों का यह विभाजन दिगम्बर-मतानुसार है। श्वेताम्बरमत में मूलगुण २७ माने गये हैं तथा अनेक मूलगुण दिगम्बरमान्य मूलगुणों से भिन्न हैं। इसके अतिरिक्त उनके ग्रन्थों में उत्तरगुणों का उल्लेख नहीं मिलता। श्वेताम्बरमान्य मूलगुणों का वर्णन मूलाचार के अध्याय में द्रष्टव्य है। यतः यापनीय श्वेताम्बर-आगमों को प्रमाण मानते थे, अतः भगवती-आराधना में वर्णित मूलगुण और उत्तरगुण यापनीय-मान्यता के विरुद्ध हैं। इससे सिद्ध होता है कि वह यापनीयों का नहीं, अपितु दिगम्बरों का ग्रन्थ है।

१०

## लोच के ही द्वारा केशत्याग का नियम

भगवती-आराधना में साधु के लिए लोच के ही द्वारा केशत्याग का विधान किया गया है, छुरे या कैंची से मुण्डन कराने का विकल्प नहीं है। लोच से केशत्याग के गुण बतलाते हुए ग्रन्थकार कहते हैं—"केशलोच से आत्मा दमित होता है, सुख में आसक्त नहीं होता और स्वाधीन, निर्दोष तथा ममत्वरहित हो जाता है। लोच करने से धर्म में श्रद्धा प्रदर्शित होती है। लोग सोचते हैं कि इसकी धर्म में बहुत श्रद्धा है, यदि न होती तो इतना दुःसह कष्ट क्यों सहता? इससे दूसरों के मन में भी धर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है और बढ़ती है। इस तरह उपबृंहण नामक गुण भी विकसित होता है। लोच से कायक्लेश नामक उग्र तप होता है और अन्य

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

दु:खों को सहने की शक्ति आती है। दु:ख सहन करने से अशुभ कर्मों की निर्जरा होती है।''[५१]

किन्तु श्वेताम्बरग्रन्थ कल्पसूत्र में लोच को अनिवार्य नहीं बतलाया गया है। भिक्षु-भिक्षुणियाँ कैंची और छुरे से भी मुण्डन करा सकती हैं। उसमें कहा गया है-''वर्षावास में रहे हुए साधुओं और साध्वियों को मस्तक पर गाय के रोम के बराबर भी केश उग आने पर पर्युषण (आषाढ़ी चौमासी से पचासवें दिन की रात्रि) का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। इससे पहले ही उस्तरे से मुंडन अथवा लुंचन करके केशरहित हो जाना चाहिए। पन्द्रह-पन्द्रह दिनों में बालों का व्यपरोपण करना चाहिए। उस्तरे से मुण्डित होनेवाले को मास-मास में मुंडन कराना चाहिए, कैंची से मुंडन करानेवाले को पन्द्रह-पन्द्रह दिनों में तथा लुंचन करनेवाले को छह माह में लुंचन करना चाहिए और स्थविरों को सांवत्सरिक लोच करना चाहिए।''[५२]

इस तरह एक परम्परा में केशलोच की अनिवार्यता और दूसरी में अननिवार्यता दोनों में महान् चारित्रिक भेद का द्योतन करती हैं। यापनीयसम्प्रदाय श्वेताम्बर-आगमों को प्रमाण मानता था। कल्पसूत्र की उसमें बहुत मान्यता थी। श्रुतसागर सूरि ने लिखा है कि वे कल्पसूत्र का वाचन करते थे।[५३] इससे प्रकट है कि यापनीय भी केशलोच को अनिवार्य नहीं मानते थे। उनके मत में भी मुनि उस्तरे या कैंची से मुण्डन करवा सकते थे। यापनीयमत से यह सैद्धान्तिक भिन्नता भगवती-आराधना को यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ सिद्ध नहीं करती। धर्म में श्रद्धा के उपबृंहण, कायक्लेश तप के अनुष्ठान,

---

५१. क— अप्पा दमिदो लोएण होइ ण सुहे य संगमुवयादि।
साधीणदा य णिद्दोसदा य देहे य णिम्ममदा॥ ९०॥
आणक्खिदा य लोचेण अप्पणो होदि धम्मसद्धा य।
उग्गो तवो य लोचो तहेव दुक्खस्स सहणं च॥ ९१॥ भगवती-आराधना।

ख— ''महती धर्मस्य श्रद्धाऽन्यथा कथमिदं दु:सहं क्लेशमारभत इति। आत्मनो धर्मश्रद्धाप्रकाशनेन परस्यापि धर्मश्रद्धाजननोपबृंहणं कृतं भवति।--- उग्रं च तप: कायक्लेशाख्यं दु:खान्तराणि च सहते।--- दु:खसहनान्निर्जरा भवत्यशुभकर्मणाम्।'' वि.टी./ भ.आ./ गा.९१।

ग— लोच = लुञ्चन, केशों को हाथ से उखाड़ना। 'लोच' संस्कृत शब्द भी है— ''तथा चेयमदोषा लोचक्रिया।'' विजयोदयाटीका / भ.आ. / गा.९०/ पृ.१२५।

५२. ''वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा परं पज्जोसवणाओ गोलोमप्पमाणमित्ते वि केसे तं रयणिं उवायणावित्तए। अज्जेणं खुरमुंडेण वा लुक्क-सिरएण वा होयव्वं सिया। पक्खिया आरोवणा, मासिए खुरमुंडए, अद्धमासिए कत्तरिमुंडे, छम्मासिए लोए, संवच्छरिए वा थेरकप्पे।'' कल्पसूत्र/ प्राकृत भारती जयपुर / सूत्र २८३।

५३. ''यापनीयास्तु वेसरा गर्दभा इवोभयं मन्यन्ते, रत्नत्रयं पूजयन्ति, कल्पं च वाचयन्ति''।
दंसण-पाहुड / टीका / गाथा ११।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

दुःखसहन के अभ्यास एवं अशुभकर्मों की निर्जरा के उद्देश्य से केशलोच की अनिवार्यता का विधान उसे दिगम्बरपरम्परा का ही ग्रन्थ सिद्ध करता है।

## ११
## मांस, मधु और मद्य का सर्वथा निषेध

भगवती-आराधना में कहा गया है कि मक्खन, मद्य, मांस और मधु ये चार महाविकृतियाँ (चित्त में महान् विकार उत्पन्न करने वाले कारण) हैं। इनके भक्षण से गृद्धि, प्रसंग (बार-बार उन्हीं में प्रवृत्ति), दर्प और असंयम की उत्पत्ति होती है। सर्वज्ञ की आज्ञा के प्रति आदरवान् , पापभीरु और तप में एकाग्रता का अभिलाषी जीव इन महाविकृतियों को सल्लेखना ग्रहण करने के बहुत पहले ही जीवनपर्यन्त के लिए छोड़ चुका होता है।[५४]

एषणासमिति की व्याख्या करते हुए अपराजित सूरि कहते हैं—"साधु टूटे-फूटे करछुल आदि से दिया हुआ अथवा कपाल, जूठे पात्र तथा कमलपत्र या कदलीपत्र आदि में रखकर दिया हुआ आहार ग्रहण न करे। मांस, मधु , मक्खन एवं साबुत (अखण्डित) फल ग्रहण न करे तथा मूल, पत्र, अंकुरित अन्न और कन्द ग्रहण न करे। इनसे जो भोजन छू गया हो, उसे भी ग्रहण न करे।"[५५]

किन्तु कल्पसूत्र में इन महाविकृतियों को केवल बार-बार खाने का निषेध किया गया है, सर्वथा खाने का नहीं। देखिए—

**"वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पति निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा हट्ठाणं आरोग्गाणं बलियसरीराणं इमाओ नव रसविगईओ अभिक्खणं अभिक्खणं आहारित्तए, तं जहा—खीरं, दहिं, नवणीयं, सप्पिं, तिल्लं, गुडं, महुं, मज्जं, मंसं।"** (सूत्र २३६)।

**अनुवाद**—"वर्षावास में श्रमणों और श्रमणियों को, जो हृष्ट-पुष्ट हों, नीरोग हों, बलिष्ठ शरीरवाले हों, उन्हें दूध, दही, मक्खन, घी, तेल, गुड़, मधु, मद्य

---

५४. चत्तारि महावियडीओ होंति णवणीदमज्जमंसमहू।
कंखा-पसंग-दप्पाऽसंजमकारीओ एदाओ॥ २१५॥
आणाभिकंखिणावज्जभीरुणा तवसमाधिकामेण।
ताओ जावज्जीवं णिज्जूढाओ पुरा चेव॥ २१६॥ भगवती-आराधना।

५५. "न खण्डेन भिन्नेन वा कडकच्छुकेन दीयमानं, कपालोच्छिष्टभाजने पद्मकदलीपत्रादिभाजने निक्षिप्य दीयमानं वा मांसं, मधु , नवनीतं, फलम् अदारितं, मूलं, पत्रं, साङ्कुरं, कन्दं च वर्जयेत्। तत्संस्पृष्टानि सिद्धान्यपि---न दद्यान्नखादेन्न स्पृशेच्च।" विजयोदयाटीका / भ.आ./गा.१२००/ पृ.६०९।

और मांस, इन नौ रस-विकृतियों (चित्तविकारोत्पादक रसों) को बार-बार नहीं खाना चाहिए।''[५६]

यहाँ, मद्य, मांस, मधु और नवनीत को कभी भी न खाने का उपदेश दिया जाना चाहिए था, जो नहीं दिया गया। केवल बार-बार खाने का निषेध किया गया है, वह भी केवल वर्षावास में। इससे स्पष्ट है कि कल्पसूत्र श्रमण और श्रमणियों को वर्षावास में कभी-कभी मद्य, मांस और मधु खाने की अनुमति देता है, बार-बार नहीं। किन्तु वर्षावास के बाद बार-बार खाने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

न केवल कल्पसूत्र में, आचारांग,[५७] ज्ञातृधर्मकथा, निशीथसूत्र, दशवैकालिक आदि में भी उपर्युक्त पदार्थों के भक्षण की अनुमति दी गई है। ज्ञातृधर्मकथा में शैलक राजर्षि (जो राजा से मुनि बन गये थे) की कथा है। एक बार वे बीमार पड़ गये। उनके पुत्र राजा मंडुक ने चिकित्सकों को बुलाया और आज्ञा दी कि तुम राजर्षि शैलक की प्रासुक और एषणीय औषध, भेषज एवं भोजन-पान से चिकित्सा करो। तब चिकित्सकों ने साधु के योग्य औषध, भेषज एवं भोजनपान से उनकी चिकित्सा की और मद्यपान करने की सलाह दी। राजर्षि ने वैसा ही किया। फलस्वरूप साधु के योग्य औषध, भेषज, भोजन-पान तथा मद्य के सेवन से शैलक राजर्षि का रोगातङ्क शान्त हो गया। किन्तु वे स्वादिष्ट भोजन और मद्यपान में अत्यन्त आसक्त और मूर्च्छित हो गये।[५८]

माननीय पं० दलसुखभाई मालवणिया (प्रसिद्ध श्वेताम्बर विद्वान्) **निशीथ : एक अध्ययन** में साधु के मांसादि ग्रहण के विषय में शास्त्रीय विधान को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—

''वस्तुविचार में यह स्पष्ट है कि साधु के लिए यह उत्सर्गमार्ग है कि वह मद्य-मांस आदि वस्तुओं को आहार में न ले। अर्थात् उक्त दोषपूर्ण वस्तुओं की

---

५६. अनुवादक—महोपाध्याय विनयसागर जी / कल्पसूत्र / प्रकाशक-प्राकृत भारती, जयपुर।

५७. आचारांग / द्वितीय श्रुतस्कन्ध / अध्ययन १ / उद्देशक १० / सूत्र ५८ / सम्पादक पं. बसन्तीलाल नलवाया / प्रकाशक—धर्मदास जैनमित्रमण्डल, रतलाम / १९८२ ई.।

५८. ''तए णं तेगिच्छिया मंडुएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा सेलयस्स रायरिसिस्स अहापवित्तेहिं ओसह-भेसज्ज-भत्त-पाणेहिं तेगिच्छं आउट्टेंति। मज्जपाणयं च से उवदिसंति। तए णं तस्स सेलयस्स अहापवित्तेहिं जाव मज्जपाणेणं रोगायंके उवसंते होत्था, हट्ठे जाव बलियसरीरे (गलियसरीरे) जाए ववगयरोगायंके। तए णं से सेलए तंसि रोगायकंसि उवसंतंसि समाणंसि, तंसि विपुलंसि असण-पाण-खाइम-साइमंसि मज्जपाणए य मुच्छिए गढिए गिद्धे ---।'' ज्ञाताधर्मकथांग/अध्ययन ५, शैलक/अनुवादक : मधुकर मुनि/आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, राजस्थान/पृष्ठ १८५।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

गवेषणा न करे और कभी कोई देता है, तो कह दे कि ये वस्तुएँ मेरे लिए अकल्प्य हैं।[५९] और यह भी स्पष्ट है कि भिक्षु का उत्सर्गमार्ग तो यही है कि पिण्डैषणा के नियमों का यथावत् पालन करे। अर्थात् अपने लिए बनी कोई भी चीज न ग्रहण करे। तारतम्य का प्रश्न तो अपवादमार्ग में उपस्थित होता है कि जब अपवादमार्ग का अवलम्बन करना हो, तब क्या करे? क्या वह वस्तु को महत्त्व दे या नियमों को? **निशीथ** में रात्रिभोजनसम्बन्धी अपवादों के वर्णन-प्रसंग में जो कहा गया है, वह प्रस्तुत में निर्णायक हो सकता है। अत एव यहाँ उसकी चर्चा की जाती है। कहा गया है कि द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक का मांस हो, तो अल्पेन्द्रिय जीवों का मांस लेने में कम दोष है और उत्तरोत्तर अधिकेन्द्रिय जीवों का मांस ग्रहण करने में उत्तरोत्तर अधिक दोष है। जहाँ के लोगों को यह पता हो कि 'जैनश्रमण मांस नहीं लेते' वहाँ आधाकर्म-दूषित अन्य आहार लेने में कम दोष है और मांस लेने में अधिक दोष, क्योंकि परिचित जनों के यहाँ से मांस लेने पर निन्दा होती है। किन्तु जहाँ के लोगों को यह ज्ञान नहीं है कि 'जैनश्रमण मांस नहीं खाते' वहाँ मांस का ग्रहण करना अच्छा है और आधाकर्म-दूषित आहार लेना अधिक दोषावह है, क्योंकि आधाकर्मिक आहार लेने में जीवघात है। अतएव ऐसे प्रसंग में सर्वप्रथम द्वीन्द्रिय जीवों का मांस ले, उसके अभाव में क्रमशः त्रीन्द्रिय आदि का। इस विषय में स्वीकृत साधुवेश में ही लेना या वेष बदलकर, इसकी भी चर्चा है।[६०] उक्त समग्र चर्चा का सार यह है कि जहाँ अपनी आत्मसाक्षी से ही निर्णय करना है और लोकापवाद का कुछ भी डर नहीं है, वहाँ गोचरी-सम्बन्धी नियमों के पालन का ही अधिक महत्त्व है। अर्थात् औद्देशिक फलाहार की अपेक्षा मांस लेना, न्यूनदोषावह समझा जाता है—ऐसी स्थिति में साधक की अहिंसा कम दूषित होती है। यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि जब फासुग—अचित्त वस्तु मांसादि का सेवन भी अपने बलवीर्य की वृद्धि के निमित्त करना अप्रशस्त है, तो जो आधाकर्मादि दोष से दूषित अविशुद्ध भोजन करता है, उसका तो कहना ही क्या?[६१] अर्थात् वह तो अप्रशस्त है ही। इससे यह भी सिद्ध होता है कि मांस को भी फासुग—अचित्त माना गया है।"[६२]

मालवणिया जी आगे लिखते हैं—"**निशीथ सूत्र** (११-८०) में, यदि भिक्षु मांस-भोजन की लालसा से उपाश्रय बदलता है, तो उसके लिए प्रायश्चित्त का विधान है।

---

५९. दशवैकालिक ५.७३, ७४, गा. ७३ के 'पुग्गल' शब्द का अर्थ मांस है। इसका समर्थन निशीथचूर्णि से भी होता है—गाथा २३८, २८८, ६१००। 'निशीथ : एक अध्ययन'/पाद-टिप्पणी/पृष्ठ ६२।

६०. निशीथ/गाथा ४३६-३९, ४४३-४४७।

६१. निशीथ/चूर्णि गाथा ४६९।

६२. निशीथ : एक अध्ययन (निशीथसूत्र पीठिका)/पृष्ठ ६२-६३।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

किन्तु अपवाद में गीतार्थ साधु संखड़ी आदि में जाकर मांस का ग्रहण कर सकते हैं (निशीथ, गाथा ३४८७)। रोगी के लिए चोरी से या मन्त्रप्रयोग करके, वशीकरण से भी अभीप्सित औषधि प्राप्त करना अपवादमार्ग में उचित माना गया है (निशीथ, गाथा ३४७)। औषधि में **हंसतेल** जैसी वस्तु लेना भी, जो मांस से भी अधिक पापजनक है, और वह भी आवश्यकता पड़ने पर चोरी या वशीकरण के द्वारा, अपवादमार्ग में शामिल है।[६३] चूर्णिकार ने हंसतेल बनाने की विधि का जो उल्लेख किया है, उसे पढ़कर तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। हंस को चीरकर, मलमूत्र निकालकर, अनन्तर उसके पेट को कुछ वस्तुएँ भरकर सी लिया जाता है और फिर पकाकर जो तेल तैयार किया जाता है, वह **हंसतेल** है (निशीथ, गा.३४८ की चूर्णि)।''[६४]

यह दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्पराओं में अहिंसामहाव्रत, आहारशुद्धि और संयम की दृष्टि से महान् भेद होने का प्रमाण है। यह एक गम्भीर चारित्रिक अन्तर है, जो दोनों परम्पराओं की बुनियाद तक जाता है। जैसा कि प्रसिद्ध है, यापनीयमत के अनुयायी श्वेताम्बर-आगमों को प्रमाणरूप में स्वीकार करते थे, इससे सूचित होता है कि उनके मत में भी भिक्षु-भिक्षुणियों को अपवादमार्ग के रूप में मद्य, मांस और मधु के भक्षण की अनुमति थी। इस तरह हम देखते हैं कि भगवती-आराधना का यापनीयमत से कितना गम्भीर सैद्धान्तिक मतभेद है! जहाँ यापनीयमत भिक्षु-भिक्षुणियों के लिए मद्य, मांस, मधु जैसे सर्वथा अभक्ष्य पदार्थों के भक्षण की अपवादरूप से अनुमति देता हैं, वहाँ भगवती-आराधना में इनके भक्षण का तो क्या, इनसे छुए हुए भक्ष्य पदार्थों के भी भक्षण का निषेध किया गया है। अपवादरूप से भी इनका भक्षण वर्जित है। यापनीयमत से यह गम्भीर मतभेद भगवती-आराधना के यापनीयग्रन्थ न होने का प्रबल प्रमाण है।

## १२
## अभिग्रहविधान

भगवती-आराधना में मुनि के भिक्षार्थ निकलते समय अनेक प्रकार के वृत्तिपरिसंख्यान या अभिग्रहों का विधान किया गया है। मुनि को इस तरह प्रतिज्ञा करनी होती है कि ''जिस मार्ग से पहले गया था, उसी से लौटते हुए भिक्षा मिलेगी, तो ग्रहण करूँगा, अन्यथा नहीं। सीधे मार्ग से जाने पर मिली, तो ग्रहण करूँगा, अन्यथा नहीं। (गा.'गत्तापच्चा' २२०)। एक ही अन्न की या दो अन्नों की भिक्षा ग्रहण करूँगा, अधिक की नहीं। एक दाता के ही द्वारा या दो दाताओं के ही द्वारा दिये जाने पर

६३. निशीथ/गाथा ३४८/गा. चूर्णि ५७२२।
६४. निशीथ : एक अध्ययन (निशीथसूत्र पीठिका)/पृष्ठ ६४।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

गवेषणा न करे और कभी कोई देता है, तो कह दे कि ये वस्तुएँ मेरे लिए अकल्प्य हैं।[५९] और यह भी स्पष्ट है कि भिक्षु का उत्सर्गमार्ग तो यही है कि पिण्डैषणा के नियमों का यथावत् पालन करे। अर्थात् अपने लिए बनी कोई भी चीज न ग्रहण करे। तारतम्य का प्रश्न तो अपवादमार्ग में उपस्थित होता है कि जब अपवादमार्ग का अवलम्बन करना हो, तब क्या करे? क्या वह वस्तु को महत्त्व दे या नियमों को? **निशीथ** में रात्रिभोजनसम्बन्धी अपवादों के वर्णन-प्रसंग में जो कहा गया है, वह प्रस्तुत में निर्णायक हो सकता है। अत एव यहाँ उसकी चर्चा की जाती है। कहा गया है कि द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक का मांस हो, तो अल्पेन्द्रिय जीवों का मांस लेने में कम दोष है और उत्तरोत्तर अधिकेन्द्रिय जीवों का मांस ग्रहण करने में उत्तरोत्तर अधिक दोष है। जहाँ के लोगों को यह पता हो कि 'जैनश्रमण मांस नहीं लेते' वहाँ आधाकर्म-दूषित अन्य आहार लेने में कम दोष है और मांस लेने में अधिक दोष, क्योंकि परिचित जनों के यहाँ से मांस लेने पर निन्दा होती है। किन्तु जहाँ के लोगों को यह ज्ञान नहीं है कि 'जैनश्रमण मांस नहीं खाते' वहाँ मांस का ग्रहण करना अच्छा है और आधाकर्म-दूषित आहार लेना अधिक दोषावह है, क्योंकि आधाकर्मिक आहार लेने में जीवघात है। अतएव ऐसे प्रसंग में सर्वप्रथम द्वीन्द्रिय जीवों का मांस ले, उसके अभाव में क्रमशः त्रीन्द्रिय आदि का। इस विषय में स्वीकृत साधुवेश में ही लेना या वेष बदलकर, इसकी भी चर्चा है।[६०] उक्त समग्र चर्चा का सार यह है कि जहाँ अपनी आत्मसाक्षी से ही निर्णय करना है और लोकापवाद का कुछ भी डर नहीं है, वहाँ गोचरी-सम्बन्धी नियमों के पालन का ही अधिक महत्त्व है। अर्थात् औद्देशिक फलाहार की अपेक्षा मांस लेना, न्यूनदोषावह समझा जाता है—ऐसी स्थिति में साधक की अहिंसा कम दूषित होती है। यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि जब फासुग—अचित्त वस्तु मांसादि का सेवन भी अपने बलवीर्य की वृद्धि के निमित्त करना अप्रशस्त है, तो जो आधाकर्मादि दोष से दूषित अविशुद्ध भोजन करता है, उसका तो कहना ही क्या?[६१] अर्थात् वह तो अप्रशस्त है ही। इससे यह भी सिद्ध होता है कि मांस को भी फासुग—अचित्त माना गया है।"[६२]

मालवणिया जी आगे लिखते हैं—"**निशीथ सूत्र** (११-८०) में, यदि भिक्षु मांस-भोजन की लालसा से उपाश्रय बदलता है, तो उसके लिए प्रायश्चित्त का विधान है।

---

५९. दशवैकालिक ५.७३, ७४, गा. ७३ के 'पुग्गल' शब्द का अर्थ मांस है। इसका समर्थन निशीथचूर्णि से भी होता है—गाथा २३८, २८८, ६१००। 'निशीथ : एक अध्ययन'/पाद-टिप्पणी/पृष्ठ ६२।

६०. निशीथ/गाथा ४३६-३९, ४४३-४४७।

६१. निशीथ/चूर्णि गाथा ४६९।

६२. निशीथ : एक अध्ययन (निशीथसूत्र पीठिका)/पृष्ठ ६२-६३।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

किन्तु अपवाद में गीतार्थ साधु संखड़ी आदि में जाकर मांस का ग्रहण कर सकते हैं (निशीथ, गाथा ३४८७)। रोगी के लिए चोरी से या मन्त्रप्रयोग करके, वशीकरण से भी अभीप्सित औषधि प्राप्त करना अपवादमार्ग में उचित माना गया है (निशीथ, गाथा ३४७)। औषधि में **हंसतेल** जैसी वस्तु लेना भी, जो मांस से भी अधिक पापजनक है, और वह भी आवश्यकता पड़ने पर चोरी या वशीकरण के द्वारा, अपवादमार्ग में शामिल है।[६३] चूर्णिकार ने हंसतेल बनाने की विधि का जो उल्लेख किया है, उसे पढ़कर तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। हंस को चीरकर, मलमूत्र निकालकर, अनन्तर उसके पेट को कुछ वस्तुएँ भरकर सी लिया जाता है और फिर पकाकर जो तेल तैयार किया जाता है, वह **हंसतेल** है (निशीथ, गा.३४८ की चूर्णि)।''[६४]

यह दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्पराओं में अहिंसामहाव्रत, आहारशुद्धि और संयम की दृष्टि से महान् भेद होने का प्रमाण है। यह एक गम्भीर चारित्रिक अन्तर है, जो दोनों परम्पराओं की बुनियाद तक जाता है। जैसा कि प्रसिद्ध है, यापनीयमत के अनुयायी श्वेताम्बर-आगमों को प्रमाणरूप में स्वीकार करते थे, इससे सूचित होता है कि उनके मत में भी भिक्षु-भिक्षुणियों को अपवादमार्ग के रूप में मद्य, मांस और मधु के भक्षण की अनुमति थी। इस तरह हम देखते हैं कि भगवती-आराधना का यापनीयमत से कितना गम्भीर सैद्धान्तिक मतभेद है! जहाँ यापनीयमत भिक्षु-भिक्षुणियों के लिए मद्य, मांस, मधु जैसे सर्वथा अभक्ष्य पदार्थों के भक्षण की अपवादरूप से अनुमति देता हैं, वहाँ भगवती-आराधना में इनके भक्षण का तो क्या, इनसे छुए हुए भक्ष्य पदार्थों के भी भक्षण का निषेध किया गया है। अपवादरूप से भी इनका भक्षण वर्जित है। यापनीयमत से यह गम्भीर मतभेद भगवती-आराधना के यापनीयग्रन्थ न होने का प्रबल प्रमाण है।

## १२
## अभिग्रहविधान

भगवती-आराधना में मुनि के भिक्षार्थ निकलते समय अनेक प्रकार के वृत्तिपरिसंख्यान या अभिग्रहों का विधान किया गया है। मुनि को इस तरह प्रतिज्ञा करनी होती है कि ''जिस मार्ग से पहले गया था, उसी से लौटते हुए भिक्षा मिलेगी, तो ग्रहण करूँगा, अन्यथा नहीं। सीधे मार्ग से जाने पर मिली, तो ग्रहण करूँगा, अन्यथा नहीं। (गा.'गत्तापच्चा' २२०)। एक ही अन्न की या दो अन्नों की भिक्षा ग्रहण करूँगा, अधिक की नहीं। एक दाता के ही द्वारा या दो दाताओं के ही द्वारा दिये जाने पर

६३. निशीथ/गाथा ३४८/गा. चूर्णि ५७२२।
६४. निशीथ : एक अध्ययन (निशीथसूत्र पीठिका)/पृष्ठ ६४।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

ग्रहण करूँगा। दाता के द्वारा लायी गई भिक्षा में से इतने ही ग्रास ग्रहण करूँगा। (गा.'पाडय' २२१)। सोने, चाँदी, काँसे या मिट्टी के पात्र में ही लाया गया भोजन ग्रहण करूँगा। स्त्री, बालिका, युवती या वृद्धा के ही द्वारा दिया गया आहार ग्रहण करूँगा। (गा.'पत्तस्स' २२३)।

इस प्रकार के अभिग्रहों का विधान श्वेताम्बर-आगमों में नहीं मिलता। श्वेताम्बर विद्वान् डॉ० सुरेश सिसोदिया लिखते हैं—"दिगम्बर-परम्परा के श्रमण संकल्प या अभिग्रह लेकर आहार के लिए गमन करते हैं। जहाँ उनका अभिग्रह पूरा होता है, वहीं वे आहार ग्रहण करते हैं। भगवती-आराधना में विविध प्रकार के अभिग्रह एवं संकल्पों का उल्लेख हुआ है। श्वेताम्बरपरम्परा के श्रमण आहार-ग्रहण के लिए किसी तरह का अभिग्रह या संकल्प नहीं करते।"[६५] यतः यापनीय-साधु श्वेताम्बर-आगमों को प्रमाण मानते थे, अतः यापनीयमत में भी इन अभिग्रहों की मान्यता नहीं थी, यह स्वतः सिद्ध होता है। भगवती-आराधना में प्रतिपादित यह अभिग्रहविधान भी यापनीयमत के विरुद्ध है, जिससे सिद्ध है कि वह यापनीयग्रन्थ नहीं है।

## १३
## भगवती-आराधना में कुन्दकुन्द की गाथाएँ

भगवती-आराधना में आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों से अनेक गाथाएँ ग्रहण की गयी हैं, जिनके उदाहरण **आचार्य कुन्दकुन्द का समय** नामक दसवें अध्याय के प्रथम प्रकरण में दिये गये हैं। इससे सिद्ध होता है कि वह कुन्दकुन्द की परम्परा का ग्रन्थ है। यह उसके दिगम्बरग्रन्थ होने का एक अन्य अन्तरंग प्रमाण है।

# घ
# दिगम्बरग्रन्थ होने के बहिरंग प्रमाण

## १
## सभी टीकाकार दिगम्बर

भगवती-आराधना पर जितनी भी टीकाएँ लिखी गई हैं,[६६] उन सब के लेखक दिगम्बरमुनि और दिगम्बर पण्डित ही थे। उनमें से एक भी यापनीय नहीं था।

---

६५. डॉ० सुरेश सिसोदिया : जैनधर्म के सम्प्रदाय/पृ.१७९-१८०।

६६. देखिए, पं० नाथूराम जी प्रेमीकृत 'जैन साहित्य और इतिहास'/ (प्रथम संस्करण)/ पृ.३१-३७।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

विजयोदयाटीका के कर्त्ता अपराजितसूरि अपरनाम श्रीविजयाचार्य दिगम्बर ही थे, इसके प्रमाण 'अपराजितसूरि : दिगम्बराचार्य' नामक चतुर्दश अध्याय में द्रष्टव्य हैं। 'मूलाराधना-दर्पण' टीका के लेखक पं० आशाधर जी (१३वीं शती ई०) दिगम्बर थे, यह सर्वविदित है। पं० नाथूराम जी प्रेमी ने पूना के भाण्डारकर प्राच्यविद्यासंशोधक मन्दिर में एक 'आराधनापञ्जिका' नामक टीका की प्रति देखी थी। इसके विषय में उन्होंने लिखा है—"मेरा अनुमान है कि शायद यह पञ्जिका प्रमेयकमलमार्त्तण्ड आदि के कर्त्ता आचार्य प्रभाचन्द्र की हो। उनके ग्रन्थों की सूची में एक 'आराधनापञ्जिका' का उल्लेख है।"[६७] ये स्त्रीमुक्ति और केवलिभुक्ति आदि श्वेताम्बरीय और यापनीय-मतों का प्रबल युक्तियों से खण्डन करने वाले दिगम्बराचार्य थे, यह प्रसिद्ध ही है। 'भावार्थदीपिका' नामक टीका की प्रति भी पूना के भाण्डारकर-प्राच्य-विद्या-संशोधक मन्दिर में विद्यमान है, ऐसा प्रेमी जी ने लिखा है।[६८] इसके मंगलाचरण में टीकाकार ने कुन्दकुन्द मुनि को नमस्कार किया है, जिससे उनका दिगम्बर होना प्रमाणित है।[६९] माथुरसंघ के आचार्य अमितगति ने भगवती-आराधना का संस्कृतपद्यानुवाद किया है। माथुरसंघ भी स्त्रीमुक्ति, केवलिभुक्ति और सवस्त्रमुक्ति का विरोधी था, ये केवल पिच्छी को अनावश्यक मानते थे।[७०] अतः अमितगति भी यापनीय नहीं थे, दिगम्बर ही थे। पं० सदासुखदास जी ने भी भगवती-आराधना पर भाषावचनिका लिखी है, जो कट्टर तेरापन्थी दिगम्बर जैन थे।

इस प्रकार जब यापनीयसम्प्रदाय फल-फूल रहा था, उस काल में अपराजित सूरि, प्रभाचन्द्र एवं पं० आशाधर जी जैसे दिगम्बर मुनियों एवं विद्वानों के ही द्वारा भगवती-आराधना पर टीकाएँ लिखी गईं, किसी यापनीय आचार्य ने उस पर कोई टीका नहीं लिखी, यह तथ्य इस बात का प्रमाण है कि भगवती-आराधना का पठन-पाठन केवल दिगम्बरसम्प्रदाय में ही होता था और टीकाकार उस पर टीकाएँ लिखकर उसके पठन-पाठन को प्रोत्साहित करते थे। इससे यह सूचित होता है कि भगवती-आराधना का पठन-पाठन करनेवाले और उस पर टीकाएँ लिखनेवाले दिगम्बर आचार्यों

---

६७. वही / पृ.३३।

६८. वही / पृ.३४।

६९. क— घनघटितकर्मनाशं गुरुं च वंशाधिपं च कुन्दाह्वम्।
वन्दे शिरसा तरसा ग्रन्थसमाप्तिं समीप्सुरहम्॥ २॥
ख— महासंघे गच्छे गिरिगणबलात्कारपदके,
गुरौ नन्द्याम्नायेऽन्वयवरगुरौ कुन्दमुनिपे। भावार्थदीपिका टीका।
पं० नाथूराम प्रेमी : जैन साहित्य और इतिहास / प्र.सं. / पृ.३४-३५ पर उद्धृत।

७०. षड्दर्शनसमुच्चय / त.र.दी.—गुणरत्नकृतटीका / चतुर्थ अधिकार / पृ.१६१।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

और पण्डितों को उसमें ऐसा कोई भी सिद्धान्त दिखाई नहीं देता था, जो दिगम्बरमत के प्रतिकूल हो। अतः वे उसे दिगम्बराचार्य की ही कृति मानते थे। इसके विपरीत उस पर किसी यापनीय-आचार्य की टीका उपलब्ध न होना, इस बात का सबूत है कि उसका अध्ययन-अध्यापन यापनीय-सम्प्रदाय में नहीं होता था। सम्भवतः वे उससे परिचित ही नहीं थे। यदि वह स्त्रीमुक्ति तथा केवलिभुक्ति का पोषण करनेवाले यापनीयमत का ग्रन्थ होता, तो इसका अध्ययन-अध्यापन उस सम्प्रदाय में प्रचलित होता और तत्कालीन दिगम्बरमुनि इस बात से भली-भाँति परिचित होते। इस स्थिति में वे किसी जैनाभासी सम्प्रदाय के ग्रन्थ पर टीका लिखकर अपने सम्यक्त्व को दूषित न करते, जब कि उसके द्वारा प्रतिष्ठित दिगम्बर प्रतिमाएँ भी अपूज्य मानी जाती थीं।[७१] इससे सिद्ध होता है कि यह ग्रन्थ यापनीय-परम्परा का नहीं, अपितु दिगम्बर-परम्परा का ही है।

## २

## दिगम्बराचार्यों के लिए प्रमाणभूत

भगवती-आराधना दिगम्बरसम्प्रदाय का ग्रन्थ इसलिए भी सिद्ध होता है कि भगवज्जिनसेन ने आदिपुराण (१/४९) में आराधनाकार शिवकोटि (शिवार्य) को श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया है। जिनसेन ८वीं शती ई० में हुए थे। (देखिये, अध्याय १०/प्रकरण १/शीर्षक १०.१)। उस समय यापनीय-सम्प्रदाय फल-फूल रहा था। उसकी विपरीत मान्यताओं से जिनसेन को वह जैनाभास भी प्रतीत हुआ होगा, क्योंकि विक्रम की १३वीं शताब्दी के इन्द्रनन्दी भट्टारक ने 'नीतिसार' (श्लोक १०) में यापनीयसम्प्रदाय को जैनाभास कहा है। इसलिए यदि आचार्य जिनसेन भगवती-आराधना को यापनीयग्रन्थ और शिवार्य को यापनीय-आचार्य मानते, तो उन्हें नमस्कार कदापि न करते। सन्मतिसूत्र के कर्त्ता सिद्धसेन को भी उन्होंने दिगम्बर होने के कारण ही नमस्कार किया है। (आदिपुराण १/४२)। पाँचवीं शती ई० में हुए पूज्यपाद स्वामी ने सर्वार्थसिद्धि (९/२२) में भगवती-आराधना की यह गाथा **'उक्तं च'** कहकर उद्धृत की है—

**ओकंपिय अणुमाणिय जं दिट्ठं बादरं च सुहुमं च।**
**छण्णं सद्दाउलयं बहुजण अव्वत्त तस्सेवी॥ ५६४॥**[७२]

---

७१. या पञ्चजैनाभासैरञ्चलिकारहिताऽपि नग्नमूर्तिरपि प्रतिष्ठिता सा न वन्दनीया, न चार्चनीया।''
श्रुतसागरटीका / बोधपाहुड / गा.१०।

७२. पं. फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री द्वारा सम्पादित तथा भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली द्वारा प्रकाशित सर्वार्थसिद्धि (९/२२/पृ.३४६) में यह गाथा पादटिप्पणी में दी गई है। इस ग्रन्थ के परिशिष्ट २ में निबद्ध श्री प्रभाचन्द्रविरचित 'तत्त्वार्थवृत्तिपदम्' में भी पृष्ठ ४२६ पर सूत्र ९/२२ की व्याख्या में यह गाथा 'तदुक्तं' निर्देशपूर्वक उद्धृत की गई है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

पण्डित परमानन्द जी शास्त्री लिखते हैं—"इसके सिवाय आचार्य पूज्यपाद ने सर्वार्थसिद्धि में इस आराधना-ग्रन्थ पर से और भी बहुत कुछ लिया है, जिसका एक नमूना नीचे दिया जाता है—

"**निक्षेपश्चतुर्विधः अप्रत्यक्षवेक्षितनिक्षेपाधिकरणं दुष्प्रमृष्टनिक्षेपाधिकरणं सहसा-निक्षेपाधिकरणमनाभोगनिक्षेपाधिकरणं चेति। संयोगो द्विविधो भक्तपानसंयोगाधिकरण-मुपकरणसंयोगाधिकरणं चेति। निसर्गस्त्रिविधः कायनिसर्गाधिकरणं वाग्निसर्गाधिकरणं मनोनिसर्गाधिकरणं चेति।**" (स.सि./६/९)।

"यह सब व्याख्या भगवती-आराधना ग्रन्थ की निम्न गाथाओं पर से ली गई जान पड़ती है—

**सहसाणाभोगिय दुप्पमज्जिद अपच्चवेक्खणिक्खेवो।**
**देहो व दुप्पउत्तो तहोवकरणं च णिव्वत्ति॥ ८०८॥**

**संजोयणमुवकरणाणं च तहा पाणभोयणाणं च।**
**दुट्ठुणिसिट्ठा मणवचिकाया भेदा णिसग्गस्स॥ ८०९॥**"[७३]

पूज्यपाद स्वामी द्वारा भगवती-आराधना को इस प्रकार प्रमाण माना जाना भी सिद्ध करता है कि यह दिगम्बरग्रन्थ ही है।

## ३
## रचनाकाल यापनीय-संघोत्पत्तिपूर्व

**आचार्य कुन्दकुन्द का समय** नामक दशम अध्याय में सिद्ध किया गया है कि 'भगवती-आराधना' की रचना प्रथम शताब्दी ई० के उत्तरार्ध में हुई थी, जबकि यापनीयसम्प्रदाय का उद्भव पाँचवी शताब्दी ई० के आरम्भ में हुआ था, यह 'यापनीयसंघ का इतिहास' नामक सप्तम अध्याय में सप्रमाण सिद्ध किया जा चुका है। अतः जो ग्रन्थ यापनीयसम्प्रदाय की उत्पत्ति के पूर्व लिखा गया हो, उसके यापनीयग्रन्थ होने की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती।

डॉ० सागरमल जी जब तत्त्वार्थाधिगमभाष्य को इस आधार पर यापनीयकृति मानने से इनकार करते हैं कि "भाष्य तीसरी-चौथी शती का है और यापनीयसम्प्रदाय का उद्भव चौथी-पाँचवी शताब्दी के बाद कभी हुआ था,"[७४] तब वे प्रथम शताब्दी में रची गयी

---

७३. 'भगवती आराधना और शिवकोटि'/'अनेकान्त'/१ अप्रैल १९३९/पृष्ठ ३७५।
७४. जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय/ पृष्ठ ३५७।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

भगवती-आराधना को यापनीयकृति कैसे कह सकते हैं? अतः रचनाकाल के आधार पर भी सिद्ध होता है कि भगवती-आराधना यापनीयग्रन्थ नहीं है। हाँ, यदि बोटिककथा से सम्बद्ध शिवभूति और मथुरा के शिलालेख में उल्लिखित शिवभूति से शिवार्य का एकत्व माना जाय, तो अधिक से अधिक यह सम्भावना की जा सकती है कि शिवार्य पहले श्वेताम्बर रहे होंगे, पश्चात् दिगम्बर हो गये होंगे, उसके बाद उन्होंने भगवती-आराधना ग्रन्थ रचा होगा। अतः यह हर हालत में दिगम्बराचार्यकृत ग्रन्थ है, यापनीयाचार्य-कृत कदापि नहीं।

इस तरह हम देखते हैं कि भगवती-आराधना में वैकल्पिक सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति, परतीर्थिकमुक्ति और केवलिभुक्ति, इन यापनीय मान्यताओं का निषेध करनेवाले सिद्धान्तों का प्रतिपादन है। यह बात विशेषरूप से ध्यान देने योग्य है कि उसमें न केवल इन मान्यताओं का विधान नहीं किया गया है, अपितु इनका निषेध करनेवाले सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। यह इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि भगवती-आराधना यापनीय-आचार्य द्वारा रचा गया ग्रन्थ नहीं है, क्योंकि कोई भी आचार्य अपने ग्रन्थ में अपनी ही मान्यताओं के विरुद्ध प्रतिपादन नहीं कर सकता। भगवती-आराधना के उपर्युक्त सभी सिद्धान्त दिगम्बरमत के सिद्धान्त हैं, अतः यह दिगम्बराचार्य की ही कृति है। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में कुन्दकुन्द का अनुसरण किया गया है, इस पर सभी टीकाएँ दिगम्बरों ने ही लिखीं है तथा इसकी रचना यापनीयमत की उत्पत्ति के पूर्व हुई है, इन तथ्यों से भी इसी बात की पुष्टि होती है कि यह दिगम्बरपरम्परा का ही ग्रन्थ है।

✧✧✧

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

## द्वितीय प्रकरण

# यापनीयपक्षधर हेतुओं की असत्यता एवं हेत्वाभासता

यतः भगवती-आराधना में प्रतिपादित यापनीयमत-विरुद्ध सिद्धान्तों से उसका यापनीयग्रन्थ होना असिद्ध हो जाता है, अतः यापनीयपक्षधर विद्वानों ने उसे यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने के लिए जो हेतु उपस्थित किये हैं, वे या तो असत्य हैं या हेत्वाभास हैं, यह सिद्ध होता है। उनमें से कौन सा हेतु असत्य है और कौन सा हेत्वाभास है, इसका दिग्दर्शन नीचे किया जा रहा है।

१

## शिवार्य के गुरु दिगम्बर थे

**यापनीयपक्ष**

पं० नाथूराम जी प्रेमी जी का कथन है कि शिवार्य ने भगवती-आराधना (गा.२१५९) में अपने तीन गुरुओं का उल्लेख किया है: आर्य जिननन्दगणी, आर्य सर्वगुप्तगणी और आर्य मित्रनन्दिगणी। इनके नाम दिगम्बरसम्प्रदाय की किसी पट्टावली या गुर्वावली में नहीं मिलते, अतः ये यापनीयपरम्परा के आचार्य रहे होंगे। फलस्वरूप इनके शिष्य शिवार्य भी यापनीय होंगे। इसलिए उनके द्वारा रचित भगवती-आराधना भी यापनीयसम्प्रदाय का ग्रन्थ है। (जै.सा.इ./प्र.सं./पृ.५६-५७)।

**दिगम्बरपक्ष**

१. वट्टकेर, यतिवृषभ, समन्तभद्र, स्वामिकुमार, जोइंदुदेव जैसे दिगम्बराचार्यों के नाम भी दिगम्बर-पट्टावलियों में नहीं मिलते, फिर भी वे यापनीय नहीं थे। इसलिए दिगम्बर-पट्टावलियों में नाम न होना यापनीय होने का हेतु नहीं है।

२. शिवार्य के गुरुओं के नाम यापनीय-पट्टावलियों में भी नहीं मिलते, अतः उपर्युक्त हेतु के अनुसार वे दिगम्बर सिद्ध होते हैं। इस तरह भी दिगम्बर पट्टावलियों में नाम का अभाव यापनीय होने का हेतु सिद्ध नहीं होता।

३. भगवती-आराधना में यापनीयमत-विरुद्ध सिद्धान्तों की उपलब्धि से उसका यापनीयग्रन्थ होना असिद्ध है, अतः उसके कर्त्ता और कर्त्ता के गुरुओं का भी यापनीय होना असिद्ध है।

४. उक्त ग्रन्थ में दिगम्बरमत के सिद्धान्तों का प्रतिपादन है, फलस्वरूप उसके कर्त्ता और कर्त्ता के गुरुओं का भी दिगम्बराचार्य होना प्रमाणित होता है।

ये समस्त हेतु इस बात के निर्णायक हैं कि किसी ग्रन्थकार का दिगम्बर-पट्टावलियों में नाम न होना उसके यापनीय होने का हेतु नहीं है, अतः उसे यापनीय होने का हेतु मानना हेत्वाभास है। इसलिए प्रेमी जी का भगवती-आराधना को यापनीयग्रन्थ कहना मिथ्या है।

## २
## सर्वगुप्त के दिगम्बर होने का शिलालेखीय प्रमाण

### यापनीयपक्ष

प्रेमी जी लिखते हैं—"जिन तीन गुरुओं के चरणों में बैठकर उन्होंने (शिवार्य ने) आराधना रची है, उनमें से सर्वगुप्तगणी शायद वही हैं, जिनके विषय में **शाकटायन** की **अमोघवृत्ति** में लिखा है कि '**उपसर्वगुप्तं व्याख्यातारः**' (१-३-१०४)। अर्थात् सारे व्याख्याता या टीकाकार सर्वगुप्त से नीचे हैं। चूँकि शाकटायन यापनीयसंघ के थे, इसलिए विशेष संभव यही है कि सर्वगुप्त यापनीयसंघ के ही सूत्रों या आगमों के व्याख्याता हों।"(जै.सा.इ./प्र.सं./पृ.५७)।

### दिगम्बरपक्ष

१. शिवार्य के गुरु सर्वगुप्त और शाकटायन द्वारा उल्लिखित सर्वगुप्त में एकत्व सिद्ध करनेवाला प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

२. यापनीयमत-विरुद्ध सिद्धान्तों का प्रतिपादक होने से भगवती-आराधना दिगम्बरग्रन्थ है, अतः उसके कर्त्ता शिवार्य और उनके गुरु सर्वगुप्त का दिगम्बर होना सिद्ध है। उदारदृष्टि होने के कारण यापनीय-शाकटायन के द्वारा दिगम्बर-सर्वगुप्त का उल्लेख किया जाना संभव है।

३. शिलालेखीय प्रमाण से सर्वगुप्त दिगम्बराचार्य ही सिद्ध होते हैं। पं० नाथूराम जी प्रेमी ने अपने एक पूर्व लेख[७५] में स्वयं लिखा है—

"आर्य शिव ने अपने जिन तीन गुरुओं का उल्लेख किया है, उनमें से सर्वगुप्त का नाम श्रवणबेलगोला के १०५वें नम्बर के शिलालेख में मिलता है। इस शिलालेख में अंगधारी मुनियों का उल्लेख करके फिर, कुम्भ, विनीत, हलधर, वसुदेव, अचल,

---

७५. "भगवती आराधना और उसकी टीकाएँ" / अनेकान्त/वर्ष १/किरण ३/ माघ, वीर नि. सं. २४५६ /पृ.१४९।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

मेरुधीर, सर्वज्ञ, सर्वगुप्त, महीधर, धनपाल, महावीर, वीर, इन आचार्यों के **इत्याद्यनेकसूरि** कहकर नाम लिये हैं और फिर कुन्दकुन्दाचार्य की परम्परा दी है।''[७६]

सर्वगुप्त को दिगम्बर सिद्ध करनेवाले इन प्रमाणों की उपलब्धि से सिद्ध है कि उन्हें यापनीय सिद्ध करने के लिए प्रयुक्त उपर्युक्त हेतु , हेतु नहीं, अपितु हेत्वाभास है। यतः निर्णायक हेतु हेत्वाभास है, अतः निर्णय भी आभासरूप अर्थात् भ्रान्तिपूर्ण है।

## ३

## दिगम्बराचार्यों के भी नाम आर्यान्त और नन्द्यन्त

**यापनीयपक्ष**

डॉ० सागरमल जी ने एक नया तर्क यह दिया है कि ''मुनि के नाम के साथ **आर्य** विशेषण का प्रयोग श्वेताम्बर और यापनीय परम्पराओं में लगभग छठी-सातवीं सदी तक प्रचलित रहा है, जब कि दिगम्बरपरम्परा में इसका प्रयोग नहीं देखा जाता। शिवार्य के साथ लगे हुए 'आर्य' और 'पाणितलभोजी' विशेषण उन्हें यापनीय-आर्यकुल से सम्बद्ध करते हैं। उनके गुरुओं के 'नन्दि'-नामान्तक नामों के आधार पर भी उनका सम्बन्ध यापनीयपरम्परा के नन्दिसंघ से माना जा सकता है।'' (जै.ध.या.स./पृ.१२१)।

**दिगम्बरपक्ष**

१. दिगम्बराचार्यों के भी नाम के अंत में 'आर्य' शब्द का प्रयोग मिलता है। भगवान् महावीर की शिष्य-परम्परा में द्वितीय केवली का नाम 'लोहार्य' (लोहाचार्य) था, जो 'सुधर्म' नाम से भी प्रसिद्ध थे। कहा भी गया है—

**तेण वि लोहज्जस्स य लोहज्जेण य सुधम्मणामेण।**
**गणधर-सुधम्मणा खलु जंबूणामस्स णिद्दिट्ठं॥**[७७]

---

७६. श्रीमान्कुम्भो विनीतो हलधरवसुदेवाचला मेरुधीरः
सर्व्वज्ञः सर्व्वगुप्तो महिधरधनपालौ महावीरवीरौ।
इत्याद्यनेकसूरिष्वथ सुपदमुपेतेषु दीव्यत्तपस्या-
शास्त्राधारेषु पुण्यादजनि सजगतां कोण्डकुन्दो यतीन्द्रः॥ १३॥ जै.शि.सं./मा.च./भा.१/ले.क्र.१०५ (२५४) सिद्धरबस्ती में उत्तर की ओर एक स्तम्भ पर उत्कीर्ण (शक सं. १३२०)।

७७. षट्खण्डागम-प्रस्तावना : डॉ० हीरालाल जैन / पुस्तक १/पृ.१८-१९ पर उद्धृत।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इसके अतिरिक्त चार आचारांगधारी शिष्यों में भी एक लोहार्य नाम के शिष्य थे।[७८] विष्णुनन्दी, नन्दिमित्र और अपराजित नाम भी पाँच श्रुतकेवलियों में पाये जाते हैं।[७९] एक-अंगधारियों में माघनन्दी का नाम है।[८०] नन्द्यन्त नाम दिगम्बर-परम्परा में और भी गिनाये जा सकते हैं। आचार्य कुन्दकुन्द का एक नाम **पद्मनन्दी** था। पूज्यपादस्वामी **देवनन्दी**-नाम-धारी थे। 'परीक्षामुख' के कर्त्ता **माणिक्यनन्दी** का नाम भी ऐसा ही है। अतः **आर्यान्त** और **नन्द्यन्त** नाम होना यापनीयसंघी होने का हेतु (असाधारणधर्म या लक्षण) नहीं है, अपितु हेत्वाभास है।

पं० नाथूराम जी प्रेमी लिखते हैं—"**आर्य** शब्द **आचार्य** का पर्यायवाची है। प्राचीन ग्रन्थों में यह अधिक व्यवहृत हुआ है।"[८१] इसका प्रमाण यह है कि लोहार्य को लोहाचार्य भी कहा गया है।

२. पाणितलभोजी दिगम्बर मुनि भी होते हैं, अतः यह विशेषण भी यापनीयत्व का असाधारणधर्म नहीं है। फलस्वरूप यह भी हेत्वाभास है।

इसलिए **आर्यान्त** और **नन्द्यन्त** नामों तथा **पाणितलभोजी** विशेषण के आधार पर भी भगवती-आराधना को यापनीयग्रन्थ कहना भ्रान्तिपूर्ण है।

## ४

## अपराजित सूरि दिगम्बराचार्य थे

### यापनीयपक्ष

पं० नाथूराम जी प्रेमी—"अपराजित सूरि यदि यापनीय संघ के थे, तो अधिक संभव यही है कि उन्होंने अपने ही सम्प्रदाय के ग्रन्थ की टीका की है।" (जै.सा.इ./प्र.सं./पृ.५७)।

### दिगम्बरपक्ष

१. अपराजित सूरि ने भगवती-अराधना की विजयोदयाटीका में सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति और परतीर्थिकमुक्ति का निषेध करनेवाले सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया

---

७८. वही/पुस्तक १/पृ.१८।

७९. वही/पुस्तक १/पृ.१८-१९।

८०. वही/पुस्तक १/पृ.२३।

८१. "भगवती-आराधना और उसकी टीकाएँ" अनेकान्त/ वर्ष १/ किरण ३/ माघ, वी.नि.सं. २४५६ / पृ.१४६।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

है, जिससे सिद्ध है कि वे यापनीयपरम्परा के नहीं, अपितु दिगम्बरपरम्परा के आचार्य थे। इसका सप्रमाण विवेचन अगले अध्याय में द्रष्टव्य है।

२. ''अपराजित सूरि **यदि** यापनीयसंघ के थे'' प्रेमी जी के इन उपर्युक्त वचनों से स्पष्ट है कि अपराजित सूरि के यापनीयसंघी होने का उनके पास कोई प्रमाण नहीं है।

इन दो कारणों से सिद्ध होता है कि यह हेतु असत्य है। हेतु के असत्य होने से निर्णय भी असत्य है। अर्थात् अपराजितसूरि को यापनीय मानना असत्य है, अतः भगवती-आराधना को भी यापनीयसम्प्रदाय का ग्रन्थ कहना असत्य है।

## ५

## भगवती-आराधना में श्वेताम्बरग्रन्थों की गाथाएँ नहीं

**यापनीयपक्ष**

पं. नाथूराम जी प्रेमी—''आराधना की गाथाएँ काफी तादाद में श्वेताम्बर सूत्रों में मिलती हैं। इससे शिवार्य के इस कथन की पुष्टि होती है कि पूर्वाचार्यों की रची हुई गाथाएँ उनकी उपजीव्य हैं।'' (जै.सा.इ./प्र.सं./पृ.५७)। अर्थात् शिवार्य श्वेताम्बराचार्यों को अपना पूर्वाचार्य मानते थे, इसीलिए उनके द्वारा रचित गाथाएँ उन्होंने भगवती-आराधना में ग्रहण की हैं, जो उनके यापनीय होने का प्रमाण है।

**दिगम्बरपक्ष**

प्रेमी जी ने उपर्युक्त विचार सन् १९३९ ई० में लिखे एक लेख में व्यक्त किये हैं। किन्तु इससे दस वर्ष पूर्व (सन् १९२९ ई० में) जो लेख उन्होंने लिखा था, उसमें इसके ठीक विपरीत विचार प्रकट किये थे। लेख का सम्बन्धित अंश नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

''आचार्य वट्टकेर का 'मूलाचार' और यह 'भगवती-आराधना', दोनों ग्रन्थ उस समय के हैं, जब मुनिसंघ और उसकी परम्परा अविच्छिन्नरूप से चली आ रही थी और जैनधर्म की दिगम्बर और श्वेताम्बर नाम की मुख्य शाखाएँ एक-दूसरे से इतनी अधिक जुदा और कटुभावापन्न नहीं हो गई थीं, जितनी कि आगे चलकर हो गयीं। इन दोनों ही ग्रन्थों में ऐसी सैकड़ों गाथाएँ हैं, जो श्वेताम्बर-सम्प्रदाय के भी प्राचीन ग्रन्थों में मिलती हैं और जो दोनों सम्प्रदायों के जुदा होने के इतिहास की खोज करनेवालों को बहुत सहायता दे सकती हैं। पं० सुखलाल जी ने **पंचप्रतिक्रमण** नामक ग्रन्थ की विस्तृत भूमिका में एक गाथासूची देकर बतलाया है कि भद्रबाहु स्वामी की **आवश्यक**-

**निर्युक्ति** और वट्टकेर स्वामी के **मूलाचार** की पचासों गाथाएँ बिलकुल एक हैं। अभी बम्बई में जब मैंने **भगवती-आराधना** की कुछ गाथाएँ पढ़कर सुनाईं, तब उन्होंने कहा कि उनमें से भी अनेक गाथाएँ श्वेताम्बरग्रन्थों में मिलती हैं। उदाहरण के लिए ४२७ नम्बर की नीचे लिखी गाथा देखिए—

**आचेलक्कुद्देसियसेज्जाहररायपिण्डकिरियम्मे।**
**वदजेट्ठपडिक्कमणे मासं पज्जोसवणकप्पो॥**

"इस गाथा में दस प्रकार के श्रमणकल्प का नामोल्लेख है। बिलकुल यही गाथा श्वेताम्बर-कल्पसूत्र में मिलती है और शायद आचारांगसूत्र में भी है। इस बात का उल्लेख करते हुए पण्डित जी [८२] लिखते हैं कि—"मूलाचार में श्री भद्रबाहुकृत निर्युक्तिगत गाथाओं का पाया जाना बहुत अर्थसूचक है। इसमें श्वेताम्बर-दिगम्बर-सम्प्रदाय की मौलिक एकता के समय का कुछ प्रतिभास होता है।"[८३]

इस पूर्व लेख में प्रेमी जी ने भगवती-आराधना को दिगम्बरग्रन्थ ही माना है और बतलाया है कि भगवती-आराधना आदि दिगम्बरग्रन्थों तथा आवश्यकनिर्युक्ति आदि श्वेताम्बर-ग्रंथों में जो समान गाथाएँ मिलती हैं, वे दोनों सम्प्रदायों को अपनी समान मातृपरम्परा से प्राप्त हुई हैं। इस गाथागत समानता से दोनों सम्प्रदायों की मौलिक एकता पर प्रकाश पड़ता है। इस मत के समर्थन में प्रेमी जी ने श्वेताम्बर विद्वान् पं० सुखलाल जी संघवी के वचन भी उद्धृत किये हैं। इस प्रकार प्रेमी जी का उत्तरकालीन मत उनके ही पूर्वकालीन मत से बाधित है। पं० सुखलाल जी के वचन भी प्रेमी जी के उत्तरकालीन मत का खण्डन करते हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों की भी कुछ गाथाएँ श्वेताम्बर-आगमों की गाथाओं से सादृश्य रखती हैं। इसका कारण बतलाते हुए डॉ० ए० एन० उपाध्ये ने प्रवचनसार की प्रस्तावना में लिखा है—

"The traditional aspect of Kundakunda's works is clear from the fact that his works have some common verses with some texts of the Śvetāmbara canon, being a common property in early days they have been preserved by both the sections independently." (p. 23).

---

८२. पण्डित सुखलाल जी संघवी, प्रसिद्ध श्वेताम्बर विद्वान्।

८३. पं० नाथूराम जी प्रेमी : 'भगवती आराधना और उसकी टीकाएँ'/'अनेकान्त'/वर्ष १/किरण ३/माघ, वीर नि. सं. २४५६/पृ.१४९ / लेख का शेषांश 'अनेकान्त'/ वर्ष १/किरण ४ / दिनांक २२.१२.२९ में प्रकाशित।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इस तरह प्रेमी जी के पूर्वलेख तथा उसमें उद्धृत पं० सुखलाल जी के वचनों एवं डॉ० उपाध्ये के उपर्युक्त शब्दों से यह ऐतिहासिक तथ्य सामने आता है कि न तो दिगम्बरों ने श्वेताम्बरग्रन्थों से कुछ लिया है, न श्वेताम्बरों ने दिगम्बरग्रन्थों से। दोनों को एक ही मूल स्रोत से अर्थात् विभाजनपूर्व के समान आचार्यों से, जो एकान्त-अचेलमुक्तिवादी थे, वह सब प्राप्त हुआ है, जो दोनों सम्प्रदायों में एक जैसा है। उसे दोनों सम्प्रदायों ने स्वतन्त्ररूप से श्रुतिपरम्परा द्वारा अपने-अपने पास सुरक्षित रखा है, जैसे उपर्युक्त गाथाएँ, चौबीस तीर्थंकरों के नाम तथा कर्मसिद्धान्त, सात तत्त्व, षड् द्रव्य आदि से सम्बन्धित ज्ञान। इसलिए भगवती-आराधना में जो गाथाएँ श्वेताम्बरग्रन्थों की गाथाओं से साम्य रखती हैं, वे श्वेताम्बरग्रन्थों से गृहीत नहीं हैं, अपितु दिगम्बरों और श्वेताम्बरों की जो **एकान्त-अचेलमार्गी समान आचार्य-परम्परा** थी, उससे भगवती-आराधनाकार को प्राप्त हुई हैं। अतः भगवती-आराधना को यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने के लिए जो श्वेताम्बरग्रन्थों से गाथाएँ ग्रहण किये जाने का हेतु बतलाया गया है, वह असत्य है। हेतु के असत्य होने से सिद्ध है कि **भगवती-आराधना** यापनीयग्रन्थ नहीं है।

## ६

## श्वेताम्बर-यापनीय-समानपूर्वपरम्परा कपोलकल्पित

डॉ० सागरमल जी भी स्वीकार करते हैं कि उक्त समान गाथाएँ समान पूर्वपरम्परा से भगवती-आराधना में आयी हैं। किन्तु उन्होंने समान पूर्वपरम्परा के ही आधार पर भगवती-आराधना को यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने के लिए एक कपोलकल्पित हेतु प्रस्तुत किया है। वह यह कि मूल निर्ग्रन्थसंघ के विभाजन से दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायों का नहीं, अपितु श्वेताम्बर और यापनीय सम्प्रदायों का उद्भव हुआ था। अतः इन दोनों सम्प्रदायों की ही समान पूर्वपरम्परा थी। इसलिए इन दोनों को ही समान पूर्वपरम्परा से समान तत्त्व प्राप्त हुए थे। फलस्वरूप श्वेताम्बरग्रन्थों की गाथाओं से साम्य रखनेवाली गाथाएँ जिन श्वेताम्बरेतर ग्रन्थों में हैं, वे यापनीय-सम्प्रदाय के ग्रन्थ हैं, दिगम्बर-सम्प्रदाय के नहीं। अपने इस मन्तव्य को व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं—

"यदि हम यह स्वीकार न भी करें कि ये गाथाएँ श्वेताम्बरसाहित्य से 'आराधना' में ली गई हैं, तो यह तो मानना ही होगा कि दोनों की कोई सामान्य पूर्वपरम्परा थी, जहाँ से दोनों ने ये गाथाएँ ली हैं और सामान्य पूर्वपरम्परा श्वेताम्बर और यापनीय (बोटिक) की थी, क्योंकि दोनों आगम, प्रकीर्णक और निर्युक्ति-साहित्य के समानरूप से उत्तराधिकारी रहे हैं। अतः भगवती-आराधना में **आउरपच्चक्खाण, भत्तपरिण्णा,**

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

**संथारग, मरणसमाही** एवं **निर्युक्ति** आदि की अनेकों गाथाओं की उपस्थिति यह सिद्ध करती है कि वह यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ है।'' (जै.ध.या.स./पृ.१३०)।

डॉक्टर सा० द्वारा उपस्थित किया गया यह हेतु असत्य है, क्योंकि श्वेताम्बरों और यापनीयों की जिस सामान्य पूर्वपरम्परा से श्वेताम्बरीय गाथाओं-सदृश गाथाओं की भगवती-आराधना को उत्तराधिकार में प्राप्ति मानी गयी है, वह थी ही नहीं। इसकी सप्रमाण सिद्धि द्वितीय अध्याय में की जा चुकी है। अतः हेतु के असत्य होने से सिद्ध है कि भगवती-आराधना यापनीयग्रन्थ नही है।

**दिगम्बर-श्वेताम्बर-भेद का इतिहास** नामक षष्ठ अध्याय में युक्ति-प्रमाण-पूर्वक सिद्ध किया गया है कि **एकान्त-अचेल-मुक्तिवादी मूल निर्ग्रन्थसंघ** के विभाजन से केवल नवीन श्वेताम्बरसंघ की उत्पत्ति हुई थी, न कि श्वेताम्बर और यापनीय दो संघों की। अतः सामान्य पूर्वपरम्परा अर्थात् विभाजनपूर्व की समान आचार्यपरम्परा एकान्त-अचेलमुक्तिवादी मूल निर्ग्रन्थसंघ (दिगम्बरसंघ) तथा उससे उत्पन्न नवीन श्वेताम्बरसंघ की थी, श्वेताम्बर और यापनीय संघों की नहीं। इससे सिद्ध है कि भगवती-आराधनाकार को उक्त सदृश गाथाएँ दिगम्बरों और श्वेताम्बरों की इसी एकान्त-अचेलमुक्तिवादी समान पूर्वपरम्परा से प्राप्त हुई हैं।

## ७
## 'आराधना' की गाथाएँ श्वेताम्बरग्रन्थों में

यद्यपि यह युक्तिसंगत है कि दिगम्बर और श्वेताम्बर साहित्य में जो समान गाथाएँ हैं, वे दोनों सम्प्रदायों को उनकी समान पूर्वपरम्परा से प्राप्त हुई हैं, तथापि यह भी संभव है कि उनमें से अनेक दिगम्बरग्रन्थों से श्वेताम्बरग्रन्थों में पहुँची हों, क्योंकि एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय के साहित्य से स्वमतानुरूप सूक्तियाँ और नीतिकथाएँ निःसंकोच ग्रहण करता आया है। डॉ० सागरमल जी ने यह संभावना देखते हुए भगवती-आराधना का रचनाकाल उन श्वेताम्बरग्रन्थों के रचनाकाल से पश्चाद्वर्ती सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, जिनमें भगवती-आराधना की गाथाओं से मिलती-जुलती गाथाएँ हैं, ताकि यह सिद्ध न हो सके कि वे समान गाथाएँ 'भगवती-आराधना' से श्वेताम्बरग्रन्थों में आयी हैं, बल्कि यह सिद्ध हो कि श्वेताम्बरग्रन्थों से भगवती-आराधना में पहुँची हैं। उनका हेतुवाद निम्नलिखित वक्तव्य में दर्शनीय है—

''भगवती-आराधना के यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ होने के सम्बन्ध में---एक अन्य महत्त्वपूर्ण आधार यह भी है कि उसमें श्वेताम्बरपरम्परा में मान्य प्रकीर्णकों से अनेक गाथाएँ हैं। पं० कैलाशचन्द्र जी ने भगवती-आराधना की भूमिका में इसका उल्लेख

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

किया है। जिन प्रकीर्णकों की गाथाएँ भगवती-आराधना में मिलती हैं उनमें आउरपच्चक्खाण, भत्तपरिण्णा, संथारग, मरणसमाही प्रमुख हैं। यद्यपि पण्डित जी गाथाओं की इस समानता को तो सूचित करते हैं, फिर भी वे स्पष्टरूप से यह नहीं कहते हैं कि इन ग्रन्थों से ये गाथाएँ ली गई हैं। वस्तुतः इन गाथाओं के आदान-प्रदान के सम्बन्ध में तीन विकल्प हो सकते हैं। या तो ये गाथाएँ भगवती-आराधना से इन ग्रन्थों में गई हों या फिर भगवती-आराधनाकार ने इन ग्रन्थों से ये गाथाएँ ली हों अथवा ये गाथाएँ दोनों की एक ही पूर्वपरम्परा से चली आ रही हों, जिन्हें दोनों ने लिया हो। इसमें प्रथम विकल्प है कि भगवती-आराधना से इन ग्रन्थकारों ने ये गाथाएँ ली हों, यह इसलिए सम्भव नहीं है कि ये ग्रन्थ भगवती-आराधना की अपेक्षा प्राचीन हैं। नन्दी, मूलाचार आदि में इनमें से कुछ ग्रन्थों के उल्लेख मिलते हैं। पुनः इन ग्रन्थों में गुणस्थान जैसे विकसित सिद्धान्त का भी निर्देश नहीं है, जबकि भगवती-आराधना में वह सिद्धान्त उपस्थित है। तीसरे यह स्पष्ट है कि ये ग्रन्थ आकार में लघु हैं, जबकि 'आराधना' एक विशालकाय ग्रन्थ है। यह सुनिश्चित है कि प्राचीन स्तर के ग्रन्थ प्रायः आकार में लघु होते हैं, क्योंकि उन्हें मौखिकरूप से याद रखना होता था, अतः वे 'आराधना' की अपेक्षा पूर्ववर्ती हैं।

''भगवती-आराधना में विजहना (मृतक के शरीर को जंगल में रख देने) की जो चर्चा है, वह प्रकीर्णकों में तो नहीं हैं, किन्तु भाष्य और चूर्णि में है। अतः प्रस्तुत 'आराधना' भाष्य-चूर्णियों के काल की रचना रही होगी। अतः यह प्रश्न तो उठता ही नहीं है कि ये गाथाएँ 'आराधना' से इन प्रकीर्णकों में गई हैं।

''--- यह बात तो अनेक दिगम्बर विद्वान् भी मान रहे हैं कि मूलाचार और आराधना में अनेकों गाथाएँ समान हैं और मूलाचार में वे गाथाएँ आउरपच्चक्खाण, महापच्चक्खाण, निर्युक्ति आदि श्वेताम्बरपरम्परा में मान्य ग्रन्थों से ही उद्धृत हैं।'' (जै.ध.या.स./पृ.१२९-१३०)।

इस वक्तव्य में डॉ० सागरमल जी ने भगवती-आराधना का रचनाकाल छठी शती ई० (भाष्य-चूर्णि का रचनाकाल) सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, जो प्रकीर्णक ग्रन्थों और आवश्यकनिर्युक्ति के पश्चात् आता है। ऐसा करने के लिए उन्होंने जो हेतु उपस्थित किये हैं, वे कपोलकल्पित एवं अनैकान्तिकता आदि दोषों से युक्त हैं अर्थात् असत्य एवं हेत्वाभास हैं। इसके प्रमाण नीचे प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

### ७.१. गुणस्थान-विकासवाद नितान्त कपोलकल्पित

डॉक्टर सा० के पूर्वोक्त वक्तव्य (जै.ध.या.स./पृ.१२९-१३०) से उनकी यह मान्यता प्रकट होती है कि ''श्वेताम्बरीय प्रकीर्णकग्रन्थों में गुणस्थानों का उल्लेख नहीं है, जब

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

कि भगवती-आराधना में है। इससे सिद्ध होता है कि प्रकीर्णक ग्रन्थों के रचनाकाल तक गुणस्थान-सिद्धान्त का विकास नहीं हुआ था, अतः प्रकीर्णक ग्रन्थ भगवती-आराधना से पूर्वकालीन हैं। इसलिए उक्त समान गाथाएँ भगवती-आराधना से प्रकीर्णक ग्रन्थों में नहीं पहुँच सकतीं, फलस्वरूप प्रकीर्णक ग्रन्थों से ही भगवती-आराधना में पहुँची हैं।''

किन्तु उक्त विद्वान् का गुणस्थान-विकासवाद सर्वथा कपोलकल्पित है, यह '**आचार्य कुन्दकुन्द का समय**' नामक दशम अध्याय में सप्रमाण सिद्ध किया जा चुका है। गुणस्थान-सिद्धान्त भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट है, अतः उसके विकसित होने का प्रश्न ही नहीं उठता। यतः गुणस्थान-विकासवाद का हेतु असत्य है, अतः यह निष्कर्ष भी असत्य है कि प्रकीर्णक ग्रन्थ भगवती-आराधना से पूर्वकालीन हैं।

### ७.२. प्रकीर्णकों की रचना 'आराधना' के पश्चात्

यापनीयपक्षधर विद्वान् ने उपर्युक्त वक्तव्य (जै.ध.या.स./पृ.१२९-१३०) में प्रकीर्णक ग्रन्थों के भगवती-आराधना से पूर्ववर्ती होने का जो यह हेतु बतलाया है कि उनका उल्लेख नन्दीसूत्र और मूलाचार जैसे प्राचीन ग्रन्थों में हुआ है, वह भ्रामक है। **आचार्य कुन्दकुन्द का समय** नामक दशम अध्याय में सिद्ध किया गया है कि भगवती-आराधना का रचनाकाल प्रथम शताब्दी का उत्तरार्ध है, और यह श्वेताम्बर स्रोतों से ही सिद्ध है कि भद्रबाहु-द्वितीयकृत आवश्यकनिर्युक्ति का रचनाकाल छठी शती ई० (वि० सं० ५६२, ई० सन् ५०५) है।[८४] तथा उपलब्ध प्रकीर्णक ग्रन्थों में वीरभद्ररचित आतुर-प्रत्याख्यान, भक्तपरिज्ञा (भत्तपरिण्णा), आराधनापताका तथा चउसरण (चतुःशरण) ग्यारहवीं शती ई० (१००८ या १०७८ ई०) के हैं।[८५] महाप्रत्याख्यान और मरणसमाधि के रचयिताओं के नाम अनुपलब्ध हैं, इसलिए इतिहास-लेखकों ने इनके काल का निर्देश नहीं किया है।[८६] नन्दीसूत्र (५वीं शती ई०) में आतुरप्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, मरणविभक्ति, देवेन्द्रस्तव आदि प्रकीर्णकों के नामों का उल्लेख है। अतः डॉ० सागरमल जी ने इनका रचनाकाल ५वीं शती ई० से पहले माना है,[८७] किन्तु नन्दीसूत्र की हिन्दी-विवेचना में मुनि श्री लालमुनि जी एवं मुनि श्री पारसकुमार जी ने लिखा है कि इनका विच्छेद हो गया है।[८८] अर्थात् नन्दीसूत्र में इन विच्छिन्न प्रकीर्णकों के नाम

---

८४. देवेन्द्र मुनि शास्त्री : जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा / पृ. ४३८
८५. डॉ. सागरमल जैन अभिनन्दन ग्रन्थ / खण्ड २ / पृ.४४।
८६. वही / पृ.४५।
८७. वही / पृ.४४।
८८. नन्दीसूत्र की हिन्दी-विवेचना में २९ प्रकार के उत्कालिक शास्त्रों का वर्णन करने के बाद कहा गया है कि ''इनमें से ८ विद्यमान हैं तथा २१ का विच्छेद हो गया है। (पृष्ठ ४०२)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

मात्र दिये गये हैं। इससे सिद्ध होता है कि जो महाप्रत्याख्यान, मरणविभक्ति आदि ग्रन्थ वर्तमान में उपलब्ध हैं, वे नन्दीसूत्र की रचना के बाद अर्थात् ५वीं शती ई० के पश्चात् रचे गये हैं।

दूसरी बात यह है कि भक्तपरिज्ञा (भत्तपरिण्णा) तो डॉक्टर सा० के ही कथनानुसार ११वीं शती ई० का ग्रन्थ है तथा उपलब्ध आतुरप्रत्याख्यान (वीरभद्ररचित), जिसकी गाथाओं को भगवती-आराधना में गृहीत माना गया है, वह भी ११वीं शती ई० में रचा गया है। भद्रबाहु-द्वितीयकृत आवश्यकनिर्युक्ति का रचनाकाल तो छठी शती ई० (विक्रम सं. ५६२ के लगभग)[८९] सर्वस्वीकृत है। इस प्रकार सिद्ध है कि आवश्यकनिर्युक्ति और प्रकीर्णक ग्रन्थ भगवती-आराधना के बाद रचे गये हैं। फलस्वरूप उन्हें भगवती-आराधना से पूर्ववर्ती सिद्ध करने के लिए बतलाया गया उपर्युक्त हेतु असत्य है।

### ७.३. ग्रन्थ का बृहदाकार अर्वाचीनता का लक्षण नहीं

यापनीयपक्षधर विद्वान् के उपर्युक्त वक्तव्य (जै.ध.या.स./पृ.१२९-१३०) में तीसरा तर्क यह है कि "भगवती-आराधना बृहदाकार ग्रन्थ है, जब कि आउरपच्चक्खाण, भत्तपरिण्णा, संथारग, मरणसमाही आदि प्रकीर्णक ग्रन्थ आकार में लघु हैं। प्राचीन ग्रन्थ प्रायः आकार में लघु होते हैं, क्योंकि उन्हें मौखिकरूप से याद रखना होता था। इसलिए सिद्ध है कि भगवती-आराधना इन प्रकीर्णक ग्रन्थों के बाद की रचना है।"

यदि मान्य विद्वान् के इस तर्क को उचित मान लिया जाय, तो आचारांग, कल्पसूत्र, ज्ञातृधर्मकथा जैसे आगमग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्र से अर्वाचीन सिद्ध होंगे, क्योंकि तत्त्वार्थसूत्र में छोटे-छोटे ३५७ सूत्र हैं, जो दस-बारह पृष्ठों में समा जाते हैं, जबकि आचारांग में सूत्र नहीं, आधे-आधे पृष्ठ के गद्यांश हैं और कोई-कोई तो एक-एक पृष्ठ के हैं तथा इनसे दो श्रुतस्कन्ध भरे हुए हैं, जिनमें से प्रथम श्रुतस्कन्ध में ९ अध्ययन और प्रत्येक

---

इन विच्छिन्न शास्त्रों में मरणविभक्ति आदि का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—**मरण-विभक्ति**, इसमें मरण के १७ भेदों के स्वरूप, फल आदि का वर्णन था। **आतुरप्रत्याख्यान**, इसमें असाध्य ग्लान मुनि को विधिवत् आहार की कमी करते हुए भक्त-प्रत्याख्यान की विधि का वर्णन था। **महाप्रत्याख्यान**, इसमें भव के अन्त में किये जानेवाले अनशन आदि महाप्रत्याख्यानों का वर्णन था।" (नन्दीसूत्र / पृष्ठ ४०२/अ.भा. साधुमार्गी जैन संस्कृति-रक्षकसंघ, सैलाना म.प्र., सन् १९८४)। यहाँ भूतकालीन क्रियाओं के प्रयोग से सूचित होता है कि ये ग्रन्थ वर्तमान में उपलब्ध नहीं हैं, अतः इनके नाम से जो ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उनकी रचना नन्दीसूत्र की रचना के बाद की गई है। भगवती-आराधना की कथित गाथाएँ इन्हीं परवर्ती ग्रन्थों की गाथाओं से समानता रखती हैं।

८९. देवेन्द्र मुनि शास्त्री : जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा (सन् १९७७)/ पृ. ४३८

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अध्ययन में ४ से लेकर ८ उद्देशक हैं। और द्वितीय श्रुतस्कन्ध में ७ अध्ययन और प्रत्येक अध्ययन में कई उद्देशक हैं। इनके अतिरिक्त चार चूलाएँ हैं। ये गद्यांश हैं, इन्हें तो कोई कण्ठस्थ भी नहीं कर सकता, स्मृति में सुरक्षित रखना तो दूर की बात। कल्पसूत्र में भी कहीं-कहीं आधे-आधे पृष्ठ के गद्यांश हैं। ज्ञातृधर्मकथा तो अनेक कथाओं का संग्रहग्रन्थ है। इनकी तुलना में तत्त्वार्थसूत्र तो अत्यन्त लघुकाय ग्रन्थ है। उसे कण्ठस्थ करना अत्यन्त सरल है। सभी श्रमणों और अनेक श्रावकों को वह कण्ठस्थ होता है। अतः डॉक्टर सा० के तर्क के अनुसार आचारांग, ज्ञातृधर्मकथा, कल्पसूत्र आदि अनेक आगमग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्र से बहुत बाद के सिद्ध होंगे, जब कि वे उससे पूर्वकालीन हैं।

जिस प्रकार आचारांगादि आगमग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्र की अपेक्षा विशालकाय होने पर भी तत्त्वार्थसूत्र से अर्वाचीन सिद्ध नहीं होते, उसी प्रकार भगवती-आराधना भी अपने बृहदाकार के कारण उपर्युक्त प्रकीर्णक ग्रन्थों से अर्वाचीन सिद्ध नहीं होती।

इस प्रकार ग्रन्थ के बृहदाकार होने का धर्म आचारांगादि प्राचीन ग्रन्थों में भी व्याप्त होने तथा तदपेक्षया तत्त्वार्थसूत्रादि अर्वाचीन ग्रंथों में अव्याप्त होने से अतिव्याप्ति एवं अव्याप्ति दोषों से युक्त है, अतः वह अर्वाचीनता का लक्षण नहीं है। फलस्वरूप वह हेत्वाभास है। उसके हेत्वाभास होने से भगवती-आराधना को आउरपच्चक्खाण, भक्तपरिण्णा आदि प्रकीर्णक ग्रन्थों से अर्वाचीन मानना भ्रान्तिजनित निष्कर्ष है।

### ७.४. वर्ण्यविषय की समानता रचनाकाल की समानता का लक्षण नहीं

यापनीयपक्षधर विद्वान् ने भगवती-आराधना और भाष्य-चूर्णियों में 'विजहना' के वर्णन की समानता के कारण उन्हें समकालीन माना है। (देखिए, उपर्युक्त उद्धरण / जै. ध. या. स. / पृ.१२९-१३०) यदि ऐसा माना जाय, तो भगवती-आराधना द्वादशानुप्रेक्षा के वर्णन की समानता से मरणविभक्ति-कालीन, गुणस्थान-चतुर्विधध्यान आदि के वर्णनसाम्य से तत्त्वार्थसूत्रकालीन, अचेलत्व के गुणों के वर्णनसादृश्य से आचारांग-कालीन और कुन्दकुन्द की गाथाओं से साम्य रखनेवाली गाथाओं के समावेश से कुन्दकुन्द-कालीन सिद्ध होगी। तथा यदि कोई विद्वान् आज प्राकृत में ग्रन्थ लिखकर उसमें 'विजहना' का उल्लेख करे, तो भगवती-आराधना के इक्कीसवीं सदी ई० में रचित होने का प्रसंग आयेगा। अतः वर्ण्यविषय की समानता किसी ग्रन्थ के रचनाकाल के निर्धारण का हेतु सिद्ध नहीं होती। अतः वह हेत्वाभास है।

यतः भगवती-आराधना प्रथम शताब्दी ई० का ग्रन्थ है एवं आवश्यकनिर्युक्ति तथा उपलब्ध प्रकीर्णक ग्रन्थ पाँचवी शती ई० के बाद रचे गये हैं, अतः समान गाथाओं

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

का इन श्वेताम्बरग्रन्थों से भगवती-आराधना में आना संभव नहीं है, अपितु भगवती-आराधना से उनमें जाना संभव है।

यापनीयपक्षधर विद्वान् ने लिखा है—"श्वेताम्बर जैनों के स्थानकवासी और तेरापंथी सम्प्रदाय प्रकीर्णकों को आगमों के अन्तर्गत मान्य नहीं करते।"[९०] मेरी दृष्टि से इसका कारण सम्भवतः यही है कि इन ग्रंथों की अधिकांश गाथाएँ दिगम्बरग्रंथों से ली गई हैं, जिससे वे उन्हें प्रमाणरूप नहीं मानते।

### ७.५. दिगम्बरीय-गाथाओं के श्वेताम्बरग्रन्थों में पहुँचने के प्रमाण

यह तो एकदम स्पष्ट है कि आतुरप्रत्याख्यान और भक्तपरिज्ञा[९१] में निम्नलिखित गाथाएँ कुन्दकुन्द के ग्रन्थों से ली गई हैं, क्योंकि कुन्दकुन्द ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी में हुए हैं और ये गाथाएँ उनके ग्रन्थों के अतिरिक्त किसी प्राचीन श्वेताम्बर-आगम में नहीं मिलतीं—

**ममत्तिं परिवज्जामि णिम्ममत्तिमुवट्ठिदो।**
**आलंबणं च मे आदा अवसेसं च वोसरे॥**
नि.सा./९९, भा.पा./५७, आतुरप्रत्या./२३।

**आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य।**
**आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे॥**
स.सा./२७७, नि.सा./१००, भा.पा./५८,आतुरप्रत्या./२४।

**एगो मे सासदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो।**
**सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा॥**
नि.सा./१०२, भा.पा./५९,आतुरप्रत्या./२६।

**सम्मं मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झं ण केणवि।**
**आसाए वोसरित्ता णं समाहि पडिवज्जए॥**
नि.सा./१०४,आतुरप्रत्या./२२।

**दंसणभट्ठा भट्ठा दंसणभट्ठस्स णत्थि णिव्वाणं।**
**सिज्झंति चरियभट्ठा दंसणभट्ठा ण सिज्झंति॥**
दंसणपाहुड/३, बारसाणुवेक्खा/१९, भक्तिपरिज्ञा/६६।

---

९०. डॉ० सागरमल जैन अभिनन्दन ग्रन्थ / पृ.४३।

९१. कुन्दकुन्द की गाथाओं से साम्य रखनेवाली 'आतुरप्रत्याख्यान' एवं 'भक्तपरिज्ञा' की गाथाओं का उल्लेख सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्र जी ने 'भगवती-आराधना' (शोलापुर) की प्रस्तावना (पृ.२७) में तथा डॉ० सागरमल जी ने 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' (पृ. १९२-१९३) में किया है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

**सुत्तं हि जाणमाणो भवस्स भवणासणं च सो कुणदि।**
**सूई जहा असुत्ता णासदि सुत्ते सहा णो वि॥**

सुत्तपाहुड/३।

**पुरिसो वि जो ससुत्तो ण विणासइ सो गओ वि संसारे।**
**सच्चेयणपच्चक्खं णासदि तं सो अदिस्समाणो वि॥**

सुत्तपाहुड/४।

**सूई जहा ससुत्ता न न स्सइ कयवरम्मि पडिया वि।**
**जीवो वि तह ससुत्तो न नस्सइ गओ वि संसारे॥**

भक्तपरिज्ञा/८६।

**दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं।**
**समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं॥**

पंचमहागुरुभक्ति-कुन्दकुन्द।

**दुक्खक्खय कम्मक्खय समाहिमरणं च बोहिलाभो य।**
**एयं पत्थेयव्वं न पत्थणिज्जं तओ अन्नं॥**

भक्तपरिज्ञा/१३९।

निम्नलिखित गाथाएँ **भगवती-आराधना** और **भक्तपरिज्ञा** दोनों में उपलब्ध होती हैं। इनकी विषयवस्तु पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि ये श्वेताम्बर-मान्यताओं के सर्वथा विरुद्ध हैं, क्योंकि इनमें आभ्यन्तर और बाह्य दोनों प्रकार के परिग्रह के त्याग की बात कही गई है—

क— **अब्भंतरबाहिरए सव्वे गंथे तुमं विवज्जेहि।**
**कदकारिदाणुमोदेहिं कायमणवयणजोगेहिं॥**

भगवती-आराधना/११११।

**अब्भिंतर-बाहिरए सव्वे गंथे तुमं विवज्जेहि।**
**कयकारियऽणुमईहिं कायमणोवायजोगेहिं॥**

भक्तपरिज्ञा/१३१।

ख— **संगणिमित्तं मारेइ अलियवयणं च भणइ तेणिक्कं।**
**भजदि अपरिमिदमिच्छं सेवदि मेहुणमवि य जीवो॥**

भगवती-आराधना/१११९।

**संगनिमित्तं मारेइ भणइ अलियं करेइ चोरिक्कं।**
**सेवइ मेहुण मुच्छं अप्परिमाणं कुणइ जीवो॥**

भक्तपरिज्ञा/१३२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

ग— **संगो महाभयं जं विहेडिदो सावगेण संतेण।**
**पुत्तेण चेव अत्थे हिदम्मि णिहिदेल्लए साहुं॥**

भगवती-आराधना / ११२४।

**संगो महाभयं जं विहिडिओ सावएण संतेणं।**
**पुत्तेण हिए अत्थम्मि मणिवइ कुंचिएण जहा॥**

भक्तपरिज्ञा / १३३।

घ— **सव्वगंथविमुक्को सीदीभूदो पसण्णचित्तो य।**
**जं पावइ पीयिसुहं ण चक्कवट्टी वि तं लहइ॥**

भगवती-आराधना / ११७६।

**सव्वगंथविमुक्को सीईभूओ पसंतचित्तो य।**
**जं पावइ मुत्तिसुहं न चक्कवट्टी वि तं लहइ॥**

भक्तपरिज्ञा / ११३४।

भगवती-आराधना की इन गाथाओं में आभ्यन्तर और बाह्य, दोनों प्रकार के परिग्रह को छोड़ने का उपदेश दिया गया है और क्षेत्र, वास्तु , धन, धान्य, कुप्य (वस्त्र)[९२] वर्तन, द्विपद, चतुष्पद, यान और शयन-आसन ये दस प्रकार की वस्तुएँ बाह्य परिग्रह बतलायी गयी हैं तथा कहा गया है कि मनुष्य इन्हीं के लिये जीवों को मारता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, मैथुन करता है और अपरिमित इच्छा करता है। यह बाह्य परिग्रह महाभय का कारण है। जो इस समस्त परिग्रह से मुक्त हो जाता है, वह इतना सुखी होता है, जितना चक्रवर्ती भी नहीं हो सकता।

ये गाथाएँ निरपवाद आचेलक्य[९३] का प्रतिपादन करती हैं, जो दशवैकालिक सूत्र के इस कथन के विरुद्ध है कि "साधु लज्जा और संयम के लिए जो वस्त्र, पात्र, कम्बल और पादप्रौंच्छन रखता है, उसे भगवान् ने परिग्रह नहीं कहा, अपितु उसमें मूर्च्छा करने को परिग्रह कहा है।" भगवती-आराधना की उपर्युक्त गाथाओं में वस्त्रपात्रादि सम्पूर्ण परिग्रह के त्याग को अपरिग्रह कहा गया है, जिससे सवस्त्रमुक्ति और स्त्रीमुक्ति का निषेध होता है। और यह बात डॉ० सागरमल जी ने स्वयं स्वीकार की है कि जहाँ मूर्च्छादि भावपरिग्रह के साथ वस्त्रपात्रादि द्रव्यपरिग्रह का भी पूर्ण त्याग आवश्यक मान लिया जाय, वहाँ स्त्रीमुक्ति आदि का निषेध स्वाभाविक ही है। (जै.ध.या.स. / पृ.४१२)। अतः उक्त गाथाओं में प्रतिपादित सिद्धान्त श्वेताम्बरीय मान्यताओं के विरुद्ध

९२. "कुप्यं वस्त्रम्।" विजयोदयाटीका / भ.आ. / गा. 'बाहिरसंगा' १११३ / पृ.५७१।

९३. "आचेलक्कुद्देसिय—चेलग्रहणं परिग्रहोपलक्षणं तेन सकलपरिग्रहत्याग आचेलक्यमित्युच्यते।" विजयोदयाटीका / भ.आ. / गा.४२३ / पृ.३२०।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

है। इससे सिद्ध होता है कि ये गाथाएँ मूलतः दिगम्बरग्रन्थ भगवती-आराधना की हैं, जो इनकी सैद्धान्तिक सूक्ष्मता पर ध्यान दिये बिना 'भक्तपरिज्ञा' के कर्त्ता द्वारा अपने ग्रन्थ में संगृहीत कर ली गई हैं।

### ७.६. परसाहित्यांश-ग्रहण से कर्तृत्व-परिवर्तन नहीं

यदि एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय के ग्रन्थों से कुछ अपने अनुकूल लेता भी है, तो इससे उस ग्रन्थ का कर्तृत्व नहीं बदल जाता। **उत्तराध्ययनसूत्र** में **महाभारत** और **बौद्ध ग्रन्थों** से अनेक श्लोक और गाथाएँ ली गई हैं। श्री मधुकर मुनि ने **ज्ञाताधर्मकथांग** की प्रस्तावना (पृ.३०) में निम्नलिखित उदाहरण दिये हैं—

**मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे दह्यति किञ्चन।**

महाभारत/१२, १७, १८-१९।

**मिथिलायां दह्यमानायां न मे किञ्चि अदह्यत।**

जातक/६/५४-५५।

**महिलाए डज्झमाणीए ण मे डज्झइ किंचणं।**

उत्तराध्ययन/९/१४।

**मासे मासे कुसग्गेन बालो भुञ्जेय्य भोजनं।**
**न सो संखतधम्मानं कलं अग्घति सोळसिं॥**

धम्मपद/७०।

**मासे मासे तु जो बालो कुसग्गेणं तु भुंजए।**
**न सो सुयक्खाय धम्मस्स कलं अग्घइ सोलसिं॥**

उत्तराध्ययन/९/४४।

**यो सहस्सं सहस्सेन संगामे मानुसे जिने।**
**एकं च जेय्यमत्तानं स वे संगामजुत्तमो॥**

धम्मपद/१०३।

**जो सहस्सं सहस्साणं संगामे दुज्जए जिणे।**
**एगं जिणेज्ज अप्पाणं एस से परमो जओ॥**

उत्तराध्ययन/९/३४।

**पंसु कूलधरं जन्तुं किसं धमनिसन्थतं।**
**एकं वनस्मिं झायन्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥**

धम्मपद/१३

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

**तवस्सियं किसं दन्तं अविचय-मंस-सोणियं।**
**सुव्वयं पत्तनिव्वाणं तं वयं बूम माहणं॥**

उत्तराध्ययन / २५ / २२

**उत्तराध्ययन** की ऐसी अनेक गाथाएँ धम्मपद आदि की गाथाओं से साम्य रखती हैं। **सूत्रकृतांग** तथा **इसिभासिय** में भी धम्मपद की गाथाओं से मिलती-जुलती अनेक गाथाएँ हैं। इस साम्य से यह नहीं कहा जा सकता कि **उत्तराध्ययन** वैदिक या बौद्ध सम्प्रदाय का ग्रन्थ है। इसी प्रकार श्वेताम्बरग्रन्थों में भगवती-आराधना से गाथाएँ ग्रहण किये जाने के कारण यह सिद्ध नहीं होता कि वे दिगम्बरग्रन्थ हैं। तथा भगवती-आराधना में कुन्दकुन्द की गाथाओं का उपलब्ध होना इस बात का प्रमाण नहीं है कि वह कुन्दकुन्दकृत है।

## ८

## 'आचेलक्कुद्देसिय' आराधना की मौलिक गाथा

### यापनीयपक्ष

प्रेमी जी—"दश स्थितिकल्पों के नामवाली-गाथा, जिसकी टीका पर अपराजित सूरि को यापनीय सिद्ध किया गया है, जीतकल्पभाष्य की १९७२ नं. की गाथा है। श्वेताम्बर-सम्प्रदाय की अन्य टीकाओं और निर्युक्तियों में भी यह मिलती है और प्रभाचन्द्र ने अपने प्रमेयकमलमार्तण्ड के स्त्रीमुक्तिविचार (नया एडीशन, पृ.१३१) प्रकरण में इसका उल्लेख श्वेताम्बर सिद्धान्त के रूप में ही किया है—"**नाचेलक्यं नेष्यते** (**अपि ईष्यतेव**) '**आचेलक्कुद्देसिय-सेज्जाहर-रायपिंड-कियिकम्मे**' **इत्यादेः पुरुषं प्रति दश-विधस्य स्थितिकल्पस्य मध्ये तदुपदेशात्।**"

"आराधना की ६६२ और ६६३ नम्बर की गाथाएँ भी दिगम्बरसम्प्रदाय के साथ मेल नहीं खाती हैं। उनका अभिप्राय यह है कि लब्धियुक्त और मायाचाररहित चार मुनि ग्लानिरहित होकर क्षपक के योग्य निर्दोष भोजन और पानक (पेय) लावें।[९४] इस पर पं० सदासुख जी ने आपत्ति की है और लिखा है कि "यह भोजन लाने की बात प्रमाणरूप नाहीं।" इसी तरह '**सेज्जागासणिसेज्जा**' आदि गाथा पर (जो मूलाचार में भी ३९१ नं. पर है) कविवर वृन्दावनदास जी को शंका हुई थी और उसका समाधान

---

९४. चत्तारि जणा भत्तं उवकप्पेंति अगिलाए पाओग्गं।
छंदियमवगददोसं अमाइणो लद्धिसंपण्णा॥ ६६१॥
चत्तारि जणा पाणयमुवकप्पंति अगिलाए पाओग्गं।
छंदियमवगददोसं अमाइणो लद्धिसंपण्णा॥ ६६२॥ भगवती-आराधना।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

करने के लिए दीवान अमरचन्द्र जी को पत्र लिखा था। दीवान जी ने उत्तर दिया था कि "इसमें वैयावृत्ति करनेवाला मुनि आहार आदि से मुनि का उपकार करे, परन्तु यह स्पष्ट नहीं किया है कि आहार स्वयं हाथ से बनाकर दे। मुनि की ऐसी चर्या आचारांग में नहीं बतलाई है।" (जै.सा.इ./ द्वि.सं./पृ.७०-७१)।

**दिगम्बरपक्ष**

प्रसिद्ध श्वेताम्बर विद्वान् पं० सुखलाल जी संघवी और स्वयं पं० नाथूराम जी प्रेमी ने स्वीकार किया है कि 'आचेलक्कुद्देसिय' गाथा उन गाथाओं में से है, जिनका अस्तित्व संघभेद से पूर्व था और संघविभाजन के बाद श्रुतिपरम्परा से दोनों सम्प्रदायों में चली आईं। यह पूर्व में सोद्धरण प्रतिपादित किया जा चुका है। (देखिये, प्रकरण २/शीर्षक ५)। इसलिए इसे श्वेताम्बर-आगमों से गृहीत मानकर शिवार्य को यापनीय सिद्ध करना न्यायोचित नहीं है।

आचार्य प्रभाचन्द्र ने **प्रमेयकमलमार्त्तण्ड** में इस गाथा का उल्लेख श्वेताम्बर-सिद्धान्त के रूप में किया है, वह ठीक ही है। क्योंकि यह गाथा उनके ग्रन्थों में भी मिलती है। प्रभाचन्द्र ने इसे प्रमाणरूप में उद्धृत कर यह सिद्ध किया है कि मुनि के लिए अचेललिंग का उपदेश श्वेताम्बर-आगमों में भी मिलता है। अतः मोक्ष का यही परम्परागत मौलिक मार्ग है। सचेलमार्ग कल्पित है, भगवान् के द्वारा उपदिष्ट नहीं है। अतः भगवान् के उपदेश के अनुसार स्त्रियों के लिए अचेललिंग संभव न होने से स्त्रीमुक्ति सम्भव नहीं है।

माननीय पं० कैलाशचन्द्र जी के कथन से भी इस बात का समर्थन होता है। वे लिखते हैं—"प्रेमी जी का यह लिखना यथार्थ है कि दसकल्पोंवाली गाथा श्वेताम्बर-आगमसाहित्य में मिलती है। इसी से आचार्य प्रभाचन्द्र ने उसका उपयोग अपने पक्ष की सिद्धि में किया है कि आप लोग आचेलक्य नहीं मानते हैं, ऐसी बात नहीं है, आप भी मानते हैं और उन्होंने प्रमाणरूप से वही गाथा उद्धृत की है। किन्तु इससे वह गाथा तो श्वेताम्बरीय सिद्ध नहीं होती। मूलाचार में भी (१०/१७) यह गाथा आई है। आशाधर के अनगारधर्मामृत में (९/८०-८१) भी इसका संस्कृत रूप मिलता है। दस कल्प तो दिगम्बरपरम्परा के प्रतिकूल नहीं हैं, किन्तु अनुकूल ही हैं। इसका प्रबल प्रमाण प्रथमकल्प आचेलक्य ही है, जिसका अर्थ श्वेताम्बर-टीकाकारों ने अल्पचेल या अल्पमूल्यचेल आदि किया है। आचार्य प्रभाचन्द्र उक्त गाथांश को उद्धृत करके लिखते हैं—"**पुरुषं प्रति दशविधस्य स्थितिकल्पस्य मध्ये तदुपदेशात्।**" पुरुष के प्रति जो दश प्रकार के स्थितिकल्प कहे हैं, उनमें आचेलक्य का उपदेश है। अतः वह

दश स्थितिकल्पों को अमान्य नहीं करते, उन्हें मान्य करके ही अपने पक्ष का समर्थन करते हैं।''[९५]

किन्तु रचनाकाल की पूर्वापरता के आधार पर विचार किया जाय, तो 'आचेलक्कु-द्देसिय' गाथा जिन ग्रन्थों में प्राप्त होती है, उनमें दिगम्बरग्रन्थ भगवती-आराधना का रचनाकाल प्रथम शताब्दी ई० है तथा श्वेताम्बरग्रन्थ कल्पनिर्युक्ति (भद्रबाहु द्वितीय) का छठी शती ई०[९६] और जीतकल्पभाष्य (जिनभद्रगणि-क्षमाश्रमण)[९७], बृहत्कल्पलघुभाष्य (संघदासगणि-क्षमाश्रमण)[९८] एवं निशीथभाष्य (विसाहगणि-महत्तर),[९९] इन सबका ७वीं शती ई० है। इससे सिद्ध होता है कि 'आचेलक्कुद्देसिय' गाथा मूलतः भगवती-आराधना की है। वहाँ से उपर्युक्त श्वेताम्बरीय ग्रन्थों में ग्रहण की गई है। पं० सुखलाल जी संघवी के वचन पूर्व में उद्धृत किये गये हैं, जिनमें उन्होंने कहा है कि यह गाथा कल्पसूत्र और आचारांग में प्राप्त होती है, पर प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक ने इन दोनों ग्रंथों को देखा है, दोनों में यह उपलब्ध नहीं है। श्वेताम्बरसाहित्य में यह गाथा सर्वप्रथम छठी शती ई० के निर्युक्तिकार भद्रबाहु-द्वितीयकृत कल्पनिर्युक्ति (कल्पसूत्रनिर्युक्ति) में उपलब्ध होती है। श्वेताम्बर विद्वान् श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री लिखते हैं—''कल्पसूत्र की सबसे प्राचीन व्याख्या निर्युक्ति और चूर्णि है। निर्युक्ति गाथारूप है और चूर्णि गद्यरूप। दोनों की भाषा प्राकृत है। निर्युक्ति के रचयिता द्वितीय भद्रबाहु हैं।'' (कल्पसूत्र-प्रस्तावना/पृ.१६)। उक्त मुनि जी का कथन है कि कल्पसूत्र की सभी व्याख्याओं में 'आचेलक्कु-द्देसिय' गाथा कल्पनिर्युक्ति से ही उद्धृत की गयी है। (कल्पसूत्र/परिशिष्ट १/टिप्पणी क्र. ३)। मुनि कल्याणविजय जी ने भी इसे कल्पनिर्युक्ति की ही गाथा बतलाया है। (श्रमण भगवान् महावीर/पृ.३३६)।

## ९

## क्षपक के लिए मुनियों द्वारा आहार-आनयन अविरुद्ध

संस्तारारूढ़ क्षपक के लिए चार मुनियों द्वारा आहार-पान लाये जाने का कथन भी दिगम्बरत्व-विरोधी नहीं है, क्योंकि '**चत्तारि जणा भत्तं उवकप्पेंति**' गाथा ६६१

---

९५. भगवती-आराधना (जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, १९७८ ई०)/प्रस्तावना/पृ.३४-३५।
९६. देवेन्द्र मुनि शास्त्री : जैनागम साहित्य मनन और मीमांसा / पृ.४३८, ५४७।
९७. वही/पृ.४६१, ४६९।
९८. वही/पृ.४७३-७४।
९९. वही/पृ. ४७३, ४८२ तथा दलसुख मालवणिया—'निशीथ : एक अध्ययन'/पृ. ४४-४५/निशीथसूत्र भाग १, पीठिका, सम्पादक-अमर मुनि जी/भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली/द्वितीय संस्करण/१९८२ ई०।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

में आयी **उवकप्पेंति** (उपकल्पन्ते, उपकल्पयन्ति) क्रिया में उप-√क्लृप् अथवा उप-√क्लृप्+णिच् ('कल्पयेत्'-वि.टी./भ.आ./गा.६६१) धातु का अर्थ प्रबन्ध करना है। अपराजित सूरि ने इसका अर्थ 'आनयन्ति' (लावें) किया है, वह भी घटित हो जाता है। यहाँ **उपकल्पयन्ति** का यह अर्थ नहीं लेना चाहिए कि मुनि स्वयं भोजन बनावें या श्रावकों के यहाँ से खुद याचना करके पात्रों में रखकर लावें। पाणितलभोजी शिवार्य का यह आशय हो ही नहीं सकता। उनका अभिप्राय यह है कि चार मुनि (अकेले मुनि का विहार निषिद्ध है) बस्ती में जाकर श्रावकों को संस्तारारूढ़ क्षपक मुनि के लिए योग्य आहारपान की आवश्यकता का संकेत करें, सूचना दें। सूचना पाकर श्रावक स्वयं योग्य आहार लेकर उपस्थित हो जायेंगे। जो क्षपक मुनि संस्तारारूढ़ है, निर्बलता के कारण चलने में असमर्थ है और अभी आहार-पान के सर्वथा त्याग की स्थिति नहीं आई है, उसके लिए आहारपान की व्यवस्था का यही उपाय हो सकता है। प्राचीन काल में मुनि बस्तियों से दूर ठहरते थे। आहार के लिए बस्तियों में जाते थे। इसलिए रुग्ण या संस्तारारूढ़ क्षपक के लिए भी वहीं से आहार की व्यवस्था करानी पड़ती थी। इस प्रकार वैयावृत्य में लगे मुनियों के द्वारा श्रावकों को संकेत कर क्षपक के लिए आहार का प्रबन्ध कराना ही आहार-पान को उपकल्पित करना है। यह दिगम्बरसिद्धान्त के विरुद्ध नहीं है। आचार्य कुन्दकुन्द ने भी **प्रवचनसार** में कहा है—

**रोगेण वा क्षुधाए तण्हाए वा समेण वा रूढं।**
**दिट्ठा समणं साहू पडिवज्जदु आदसत्तीए॥ ३/५२॥**

**वेज्जावच्चणिमित्तं गिलाणगुरुबालवुड्ढसमणाणं।**
**लोगिगजणसंभासा ण णिंदिदा वा सुहोवजुदा॥ ३/५३॥**

**अनुवाद**—"यदि कोई श्रमण रोग, भूख, प्यास अथवा थकावट से पीड़ित दिखाई दे, तो साधु को उसकी यथाशक्ति वैयावृत्य (सेवा) करनी चाहिए। रोग से पीड़ित गुरु (आचार्य), बाल (आयु में छोटे) तथा वृद्ध (आयु में बड़े) श्रमणों की वैयावृत्य के लिए यदि लौकिक-जनों से भी बातचीत करना आवश्यक हो, तो वह निन्दनीय नहीं है।"

इससे स्पष्ट है कि मुनिगण रुग्ण या संस्तारारूढ़ क्षपक-मुनियों की वैयावृत्य हेतु आहारपान, औषधि आदि की व्यवस्था करने के लिए श्रावकों को निर्देश दे सकते हैं। यह दिगम्बर-सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं है। अतः भगवती-आराधना की उक्त गाथाओं को दिगम्बर-सिद्धान्त के प्रतिकूल मानकर शिवार्य को यापनीय सिद्ध करने का प्रयास यथार्थविरोधी है।

दीवान अमरचन्द्र जी की दृष्टि में भी मुनियों के द्वारा क्षपक के लिए इस प्रकार आहारपान का प्रबन्ध किया जाना अयुक्त नहीं था। पं० नाथूराम जी प्रेमी स्वयं इस तथ्य पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि कवि वृन्दावन जी ने दीवान अमरचन्द्र जी से उपर्युक्त गाथाओं के औचित्य के विषय में जो प्रश्न किया था, उसके उत्तर से प्रतीत होता है कि "दीवान जी को मुनि का केवल स्वयं रसोई बनाना अयुक्त मालूम होता है, भोजन लाकर देना नहीं। परन्तु पं० सदासुखदास जी चूँकि ज्यादा कड़े तेरापन्थी थे, इस कारण उन्हें आहार लाकर देना भी ठीक नहीं जँचता था।"[१००]

किन्तु सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री ने प्राचीनकाल की परिस्थितियों में मुनियों द्वारा आहार लाकर दिया जाना भी उचित माना है। वे लिखते हैं—"ज्ञानीजन यह जानते हैं कि जब क्षपक संस्तर पर आरूढ़ होता है, तब उसकी शारीरिक स्थिति कैसी होती है। वह गोचरी नहीं कर सकता। जब तक गोचरी करने में समर्थ होता है, तब तक संस्तरारूढ़ नहीं किया जाता। ऐसी स्थिति में यदि उसे भूखा-प्यासा रखा जाये, तो उसके परिणाम स्थिर नहीं रह सकते। अतः उस युग में जब साधु वनों में निवास करते थे, तब ऐसे मरणासन्न साधु के लिए यही व्यवस्था सम्भव थी कि अन्य साधु उसके योग्य खान-पान विधिपूर्वक लावें और उसे विधिपूर्वक देवें। आज की तरह उस समय साधुओं के निवासस्थान पर जाकर श्रावकों के चौके तो लगते नहीं थे, और लगते भी, तो इस प्रकार के उद्दिष्ट भोजन को वे स्वीकार नहीं कर सकते थे। गाथा में आहार लाने का स्पष्ट विधान है, अतः बनाकर देने की कोई बात ही नहीं है। इसलिए उक्त कथन दिगम्बरपरम्परा के विरुद्ध नहीं है। समाधि एक-दो दिन में नहीं होती। उसमें समय लगता है और वही समय वैयावृत्य का होता है।"[१०१]

इस प्रकार 'भगवती-आराधना' की गाथाओं में वर्णित जो आचार दिगम्बरमत के प्रतिकूल नहीं है, उसे प्रतिकूल मान लिया गया है और उसे भगवती-आराधना को यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने के लिए हेतुरूप में प्रस्तुत किया गया है। किन्तु यह हेतु असत्य है, अतः इसके आधार पर किया गया निर्णय भी असत्य है। अर्थात् भगवती-आराधना यापनीयग्रन्थ नहीं, अपितु दिगम्बरग्रन्थ है।

---

१००. पं. नाथूराम जी प्रेमी : 'भगवती आराधना और उसकी टीकाएँ'/'अनेकान्त'/ वर्ष १/ किरण ३/माघ, वी.नि.सं. २४५६/पादटिप्पणी/पृष्ठ १५०।

१०१. भगवती-आराधना (जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर)/प्रस्तावना/पृ. ३५।
**विशेष**—यदि श्रावक किसी दूर स्थान में ठहरे हुए साधुओं के दर्शनार्थ जाते हैं और वहाँ वे भी ठहरकर अपने लिए भोजन बनाते हैं तथा उसमें से साधुओं को आहारदान करते हैं, तो वह उद्दिष्ट की परिभाषा में नहीं आता।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१०

## 'तालपलंबसुत्तम्मि' में 'कल्प' के सूत्र का उल्लेख नहीं

**यापनीयपक्ष**

प्रेमी जी—"गाथा ११२३ नं. की '**देसामासियसुत्तं**'[१०२] में **तालपलंबसुत्तम्मि** पद में जिस सूत्र का उल्लेख किया गया है, वह **कल्पसूत्र** (**बृहत्कल्प**) का है, जिसका प्रारंभ है **तालपलंबं ण कप्पदि**। इसकी विजयोदयाटीका में **तथा चोक्तं** कहकर 'कल्प' की दो गाथाएँ और दी हैं और वे ही आशाधर ने 'कल्पे' कहकर उद्धृत की हैं।" (जै.सा.इ./द्वि.सं./पृ.७१)। तात्पर्य यह कि भगवती-आराधना में बृहत्कल्प के **तालपलंब** सूत्र का उल्लेख होना उसे यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ सिद्ध करता है।

**दिगम्बरपक्ष**

**देसामासियसुत्तं** गाथा नीचे दी जा रही है। यह **आचेलक्कुद्देसिय** गाथा (४२३) से उत्पन्न शंका के समाधान में लिखी गई है। 'आचेलक्कुद्देसिय' गाथा में मुनि के लिए दस स्थितिकल्पों का विधान किया गया है, जिनमें प्रथमकल्प आचेलक्य है। आचेलक्य का अर्थ है वस्त्र का त्याग। यहाँ शंका उत्पन्न होती है कि 'आचेलक्य' शब्द से क्या केवल वस्त्र का ही त्याग सूचित होता है, क्षेत्र, वास्तु, पात्र आदि का नहीं?[१०३] इसका समाधान **भगवती-आराधना** की निम्नलिखित गाथा के द्वारा किया गया है—

**देसामासियसुत्तं आचेलक्कंति तं खु ठिदिकप्पे।**
**लुत्तोत्थ आदिसद्दो जह तालपलंबसुत्तम्मि॥ १११७॥**

**अनुवाद**—"दस प्रकार के स्थितिकल्पों में जो 'आचेलक्यसूत्र' है वह 'तालप्रलम्ब-सूत्र' के समान **देशामर्शक** है। यहाँ 'चेल' शब्द के साथ जुड़े 'आदि' शब्द का लोप हो गया है, जैसे 'तालप्रलम्बसूत्र' में 'ताल' शब्द के साथ जुड़े 'आदि' शब्द का।

**देशामर्शक सूत्र** का अर्थ है उपलक्षक वचन, अर्थात् एक पदार्थ के उल्लेख द्वारा तत्सदृश सभी पदार्थों का बोध करानेवाला संक्षिप्त लाक्षणिक शब्द या मुहावरा। जैसे कोई घर से बाहर जाते समय अपने पुत्र को आदेश देता है कि '**कौओं से**

---

१०२. जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर से सन् १९७८ में तथा फलटण से सन् १९९० में प्रकाशित भगवती-आराधना में इस गाथा का क्रमांक १११७ है।

१०३. "श्रुतं चेलपरित्यागमेव सूचयति आचेलक्कमिति नेतरत्यागमित्याशङ्क्यायामाचष्टे—देसामासिय-सुत्तं।" (विजयोदयाटीका/पातनिका/भगवती-आराधना/गाथा १११७/पृ.५७२)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

**दही बचाना'** (**काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्**), तो उसका आशय केवल कौओं से ही नहीं है, अपितु दही को हानि पहुँचानेवाले सभी पशु-पक्षियों से है। अतः 'कौआ' शब्द सभी दधि-घातक पशुपक्षियों का उपलक्षक या देशामर्शक है। वैसे ही 'आचेलक्य' शब्द केवल चेल-परित्याग का वाचक नहीं है, अपितु चेल के साथ क्षेत्र, वास्तु, धन, धान्य, भाण्ड (पात्र) आदि समस्त (दस प्रकार के) परिग्रह के त्याग का उपलक्षक है। 'चेल' शब्द के साथ समस्त परिग्रह का संकेत करनेवाला 'आदि' शब्द जुड़ा था, उसका लोप हो गया है, जिससे वह शेष परिग्रह का वाचक न रहकर उपलक्षक या देशामर्शक बन गया है।

शिवार्य ने इसका उदाहरण **तालप्रलंब-सूत्र** से दिया है। इस उदाहरण के द्वारा वे स्पष्ट करते हैं कि जैसे 'तालप्रलम्बसूत्र' में 'ताल' शब्द केवल ताड़वृक्ष का बोधक नहीं है, अपितु सभी प्रकार की वनस्पतियों का उपलक्षक है,[१०४] वैसे ही 'आचेलक्य' पद में 'चेल' शब्द मात्र वस्त्र का वाचक नहीं है, अपितु सभी प्रकार के परिग्रह का उपलक्षक है। अतः चेलपरित्याग के विधान से सकलपरिग्रह के त्याग का विधान सूचित होता है।[१०५]

'तालप्रलम्ब' शब्द श्रुतकेवली भद्रबाहु (वीर नि० सं० १७०) द्वारा रचित कहे जानेवाले श्वेताम्बर-आगम बृहत्कल्पसूत्र के "**नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा आमे तालपलंबे अभिन्ने पडिगाहत्तए**" (साधु-साध्वियों को कोई भी वनस्पति कच्ची [अपक्व] और विना छिन्न-भिन्न किये नहीं खानी चाहिए), इस सूत्र में भी आया है। टीकाकार अपराजित सूरि ने इसे तथा इसके भाष्य की दो गाथाएँ [१०६] उद्धृत कर श्वेताम्बर जिनकल्पी साधुओं को लक्ष्य करते हुए इस तथ्य को पुष्ट करने का प्रयत्न किया है कि जैसे बृहत्कल्प के उपर्युक्त सूत्र में तालप्रलम्बसूत्र देशामर्शक है, अतः सभी प्रकार की वनस्पति को अपक्व और अभग्न अवस्था में खाने का निषेध करता है, वैसे ही भगवती-आराधना में 'आचेलक्यसूत्र' भी देशामर्शक है, अतः उसमें 'चेल' शब्द के द्वारा वस्त्रपात्रादि सकल परिग्रह के त्याग का विधान किया गया है।

इससे पंडित नाथूराम जी प्रेमी ने यह निष्कर्ष निकाला है कि शिवार्य ने **तालपलंबसुत्तम्मि** पद में **सुत्त** शब्द से बृहत्कल्प के '**नो कप्पइ निग्गंथाण**'

---

१०४. " तालपलंबं ण कप्पदिति सूत्रे तालशब्दो न तरुविशेषवचनः किन्तु वनस्पत्येकदेशस्तरुविशेष उपलक्षणाय वनस्पतीनां गृहीतः।" विजयोदयाटीका/भगवती-आराधना/गा. १११७/पृ.५७३।

१०५. "चेलग्रहणं परिग्रहोपलक्षणं, तेन सकलग्रन्थत्याग आचेलक्यशब्दस्यार्थ इति।" विजयोदया-टीका/भ.आ./गा.१११७/पृ.५७३।

१०६. देखिए, उद्धृत गाथाएँ आगे विन्दु क्र. ५ के अन्तर्गत।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इत्यादि सूत्र का निर्देश किया है, अतः वे यापनीय थे। यह निष्कर्ष सर्वथा भ्रान्तिपूर्ण हैं, क्योंकि—

१. 'तालपलंबसुत्तम्मि' पद में 'सुत्त' शब्द से किसी अन्य सूत्र का उल्लेख नहीं किया गया है, अपितु 'तालपलंब' पद को ही देशामर्शक (उपलक्षक = एकदेश के कथन द्वारा सर्व का बोध करानेवाला) होने के कारण 'सूत्र' शब्द से अभिहित किया गया है, जैसे 'आचेलक्कं' को देशामर्शक होने से सूत्र संज्ञा दी गई है।[१०७]

२. जैसे 'आचेलक्कं' शब्द जिस गाथा में है, वह गाथा देशामर्शक नहीं है, इसलिए शिवार्य ने उसे देशामर्शकसूत्र की संज्ञा नहीं दी, वैसे ही 'तालपलंब' शब्द जिस वाक्य या सूत्र में प्रयुक्त होता है, वह देशामर्शक नहीं होता, इसलिए उसकी देशामर्शकसूत्र संज्ञा नहीं हो सकती। अतः 'तालपलंबसुत्त' शब्द से बृहत्कल्प के पूर्वोक्त सूत्र का उल्लेख मानना युक्तिसंगत नहीं है।

३. दिगम्बराचार्य वीरसेन स्वामी ने भी धवलाटीका में 'तालपलंबसुत्त' का देशामर्शक सूत्र के दृष्टान्त के रूप में निर्देश किया है,[१०८] किन्तु वे यापनीय नहीं थे। इसलिए उनके विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने 'सूत्र' शब्द से बृहत्कल्प के सूत्र का उल्लेख किया है। अतः यह निष्कर्ष गलत सिद्ध हो जाता है कि **तालपलंबसुत्त** शब्द का प्रयोग जहाँ किया गया है, वहाँ बृहत्कल्प के उक्त सूत्र का उल्लेख है, अत एव उल्लेखकर्ता यापनीय है।

४. भगवती-आराधना में यापनीयमत-विरुद्ध सिद्धान्तों के प्रतिपादन से स्पष्ट है कि शिवार्य यापनीय नहीं थे। इससे सिद्ध होता है कि उन्होंने 'तालपलंबसुत्तम्मि' में बृहत्कल्प के सूत्र का उल्लेख नहीं किया।

५. 'तालप्रलम्ब' संस्कृत का और **तालपलंब** प्राकृत का शब्द है। उसका वाच्यार्थ है ताड़वृक्ष की जटा।[१०९] किन्तु उसका पूर्वपद 'ताल' सभी प्रकार की वनस्पति के उपलक्षक के रूप में भी लोकप्रसिद्ध रहा है। अतः 'तालप्रलम्ब' शब्द वनस्पतिमात्र को उपलक्षित करनेवाले एक मुहावरे या लोकप्रसिद्ध लाक्षणिक शब्द के रूप में रूढ़

---

१०७. "परिग्रहैकदेशामर्शकारिसूत्रमाचेलक्यमिति।" विजयोदयाटीका / भगवती-आराधना / गा. १११७ / पृ.५७२।

१०८. "कधमिदं सुत्तं मंगल-णिमित्त-हेउ-परिमाण-णाम-कत्तारणं सकारणाणं परूवयं? ण, तालपलंबसुत्तं व देसामासियत्तादो।" धवला / षट्खण्डागम / पु.१ / १,१,१/ पृ. ९ तथा "तालपलंबसुत्तं व तस्स देसामासियत्तादो" धवला / षट्खण्डागम / पु.६ / १, ९-८, ५/ पृ. २३०।

१०९. सर मोनियर मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

हो गया। इसीलिए बृहत्कल्प के **नो कप्पइ निग्गंथाण** इत्यादि सूत्र में उसे सर्वविध वनस्पति के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। बृहत्कल्प के भाष्यकार ने निम्नलिखित गाथाओं में स्पष्ट किया है कि 'तालप्रलम्बसूत्र' में 'ताल' शब्द वनस्पति के किन प्रकारों का बोधक है—

**हरिततणोसहिगुच्छा गुम्मा वल्लीलदा य रुक्खा य।**
**एवं वणप्फदीओ तालोद्देसेण आदिट्ठा॥ इति॥**
**तालेदि दलेदित्तिव तलेव जादेत्ति उस्सिदो वत्ति।**
**तालादिणो तरुत्तियवणप्फदीणं हवदि णामं॥**[११०]

**अनुवाद**—"**ताल** शब्द से हरिततृण, औषधि, गुच्छा, बेल, लता, वृक्ष इत्यादि वनस्पतियों का कथन किया गया है। 'ताल' शब्द 'तल्' धातु से निष्पन्न हुआ है। 'तल' शब्द का अर्थ ऊँचाई भी है। जो स्कन्धरूप से ऊँचा वृक्षविशेष होता है, वह ताल वृक्ष कहलाता है। 'तालादि' में 'आदि' शब्द से वृक्ष, फूल, पत्ता आदि वनस्पति अर्थ लेना चाहिए।"

यदि 'तालप्रलम्ब' समास में आया 'ताल' शब्द उपर्युक्त वनस्पतियों के उपलक्षक के रूप में प्रसिद्ध न होता, तो तालप्रलम्बसूत्र में उसका प्रयोग करने से सूत्रकार का प्रयोजन सिद्ध न होता, क्योंकि कोई भी अध्येता यह न समझ पाता कि उस शब्द के द्वारा उपर्युक्त वनस्पतियों के अपक्व और अभग्न दशा में भक्षण का निषेध किया गया है। सभी की समझ में यह आता कि केवल ताड़वृक्ष के प्रलम्ब (जटा) का ही भक्षण निषिद्ध किया गया है। तथा भाष्यकार भी यह स्पष्ट न कर पाते कि उक्त समास में 'ताल' शब्द उपर्युक्त वनस्पतियों का उपलक्षक है। पुनः उक्त वनस्पतियों के उपलक्षक के रूप में लोकप्रसिद्ध न होने पर उसका यह अर्थ सर्वस्वीकार्य भी न होता। अतः वह देशामर्शकत्व का दृष्टान्त भी नहीं बन सकता था। यतः कल्पसूत्रकार ने 'तालप्रलम्ब' पद के उपलक्षकत्व को स्पष्ट किये बिना उसका उपलक्षक के रूप में प्रयोग किया है तथा भगवती-आराधनाकार ने 'आचेलक्य' के और धवलाकार ने णमोकारमंत्र-रूप मंगलसूत्र के देशामर्शकत्व की पुष्टि के लिए उसे दृष्टान्त के रूप में उपस्थित किया है,[१११] इससे सिद्ध है कि वह वनस्पति मात्र के उपलक्षक के रूप में लोकप्रसिद्ध था, अत एव सर्वस्वीकृत था। अर्थात् वह एक असाम्प्रदायिक प्रयोग है। अतः उसे केवल श्वेताम्बरीय ग्रन्थ (बृहत्कल्प) का विशिष्ट प्रयोग मानना युक्तिसंगत नहीं है।

---

११०. 'भगवती-आराधना' की 'देसामासियसुत्तं' गाथा १११७ की विजयोदयाटीका में उद्धृत।
१११. देखिए, पादटिप्पणी १०८।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवती-आराधना को यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने के लिए प्रेमी जी द्वारा प्रस्तुत किया गया यह हेतु कि उसकी '**देसामासियसुत्तं**' गाथा में जो **तालपलंबसुत्तम्मि** पद आया है, उस में बृहत्कल्प के सूत्र का उल्लेख है, एकदम असत्य है। हेतु के असत्य होने से यह निर्णय भी असत्य है कि भगवती-आराधना यापनीयग्रन्थ है।

## ११
## दिगम्बर मुनि भी पाणितलभोजी

### यापनीयपक्ष

प्रेमी जी—"शिवार्य ने अपने को 'पाणितलभोजी' अर्थात् हथेलियों पर भोजन करने वाला कहा है। यह विशेषण उन्होंने अपने को श्वेताम्बरसम्प्रदाय से अलग प्रकट करने के लिए दिया है। यापनीय साधु हाथ पर ही भोजन करते थे।" (जै.सा.इ./द्वि.सं./पृ.६९)।

### दिगम्बरपक्ष

दिगम्बर साधु भी पाणितलभोजी होते हैं, अतः पाणितलभोजित्व यापनीय साधुओं का असाधारणधर्म या लक्षण नहीं है। इसलिए वह शिवार्य के यापनीय होने का हेतु नहीं है, अपितु हेत्वाभास है, अर्थात् हेतु जैसा दिखनेवाला अहेतु है। अतः हेत्वाभास से किया गया यह निर्णय कि शिवार्य यापनीय थे, भ्रान्तिपूर्ण है। अर्थात् शिवार्य यापनीय नहीं थे, अपितु दिगम्बर थे। वस्तुतः शिवार्य ने अपने दिगम्बरत्व को सूचित करने के लिए उक्त विशेषण का प्रयोग किया है। पण्डित परमानन्द जी शास्त्री ने इस विषय पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—

"द्वितीय गाथा में प्रयुक्त हुए ग्रन्थकार के **पाणिदलभोइणा** इस विशेषणपद से इतनी बात स्पष्ट हो जाती है कि आचार्य शिवकोटि ने इस ग्रन्थ की रचना उस समय की है, जब कि जैनसंघ में दिगम्बर और श्वेताम्बर भेद की उत्पत्ति हो गयी थी। उसी भेद को प्रदर्शित करने के लिए ग्रन्थकर्त्ता ने अपने साथ उक्त विशेषणपद का लगाना उचित समझा है।" [११२]

'अनेकान्त' के सम्पादक पण्डित जुगलकिशोर जी मुख्तार ने भी ऐसा ही मत प्रकट किया है। वे अपनी सम्पादकीय टिप्पणी में लिखते हैं—

११२. 'भगवती-आराधना और शिवकोटि'/'अनेकान्त'/वर्ष २/किरण ६/वीर नि.सं. २४६५/१ अप्रैल, १९३९/पृष्ठ ३७३।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"इसमें ग्रन्थकर्त्ता शिवार्य ने अपना जो विशेषण 'पाणितलभोजी' दिया है, उससे इतना तो साफ ध्वनित होता है कि इस ग्रन्थ की रचना उस समय हुई है, जब कि जैनसमाज में करतलभोजियों के अतिरिक्त मुनियों का एक दूसरा सम्प्रदाय पात्र में भोजन करनेवाला भी उत्पन्न हो गया था। उसी से अपने को भिन्न दिखलाने के लिए इस विशेषण के प्रयोग की जरूरत पड़ी है। यह सम्प्रदायभेद दिगम्बर और श्वेताम्बर का भेद है, जिसका समय उभय सम्प्रदायों द्वारा क्रमशः विक्रम सं० १३६ तथा वी० नि० सं० ६०९ (वि० सं० १३९) बतलाया जाता है। इससे यह ग्रन्थ इस भेदारम्भ-समय के कुछ बाद का अथवा इसके करीब का रचा हुआ है, ऐसा जान पड़ता है।" [११३]

## १२
## मेतार्य मुनि की कथा : लोककथा

**यापनीयपक्ष**

प्रेमीजी—"आराधना की ११३२वीं गाथा में **'मेदस्स मुणिस्स अक्खाणं'** (**मेतार्य-मुनेराख्यानम्**) अर्थात् मेतार्य मुनि की कथा का उल्लेख किया गया है। पं० सदासुख जी ने अपनी वचनिका में इस पद का अर्थ ही नहीं किया है। यही हाल नई हिन्दीटीका के कर्त्ता पं० जिनदास शास्त्री का भी है। संस्कृत टीकाकार पं० आशाधर जी ने तो इस गाथा की विशेष टीका इसलिए नहीं की है कि वह सुगम है, परन्तु आचार्य अमितगति ने इसका संस्कृत अनुवाद करना क्यों छोड़ दिया? वे मेतार्य के आख्यान से परिचित नहीं थे, शायद इसी कारण।

"मेतार्यमुनि की कथा श्वेताम्बर-सम्प्रदाय में बहुत प्रसिद्ध है। वे एक चाण्डालिनी के लड़के थे, परन्तु किसी सेठ के घर पले थे। अत्यन्त दयाशील थे। एक दिन वे एक सुनार के यहाँ भिक्षा के लिए गये। उसने अपनी दूकान में उसी समय सोने के जौ बनाकर रक्खे थे। वह भिक्षा लाने के लिए भीतर गया और मुनि वहीं दूकान में खड़े रहे, जहाँ जौ रक्खे थे। इतने में एक क्रौञ्च (सारस) पक्षी ने आकर वे जौ चुग लिए। सुनार को सन्देह हुआ कि मुनि ने ही जौ चुरा लिए हैं। मुनि ने पक्षी को चुगते तो देख लिया था, परन्तु इस भय से नहीं कहा कि यदि सच बात मालूम हो जायेगी, तो सुनार सारस को मार डालेगा और उसके पेट में से अपने जौ निकाल लेगा। इससे सुनार को सन्देह हो गया कि यह काम मुनि का ही है,

---

११३. 'भगवती आराधना और उसकी टीकाएँ' इस लेख पर सम्पादकीय टिप्पणी / 'अनेकान्त'/ वर्ष १ / किरण ३/ माघ/वी. नि. सं.२४५६/पृ.१४८।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इसने ही जौ चुराये हैं। तब उसने उन्हें बहुत कष्ट दिया और अन्त में भीगे चमड़े में कस दिया। इससे उनका शरीरान्त हो गया और उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया। मेरी समझ में इस ढंग की कथा दिगम्बर-सम्प्रदाय में नहीं है। चाण्डालिनी के लड़के का मुनि होना भी शायद दिगम्बर-सम्प्रदाय के अनुकूल नहीं है।'' (जै. सा. इ. / प्र. सं./पृ. ५७-५८ तथा पृ. ५८ की पा. टि. २)।

भगवती-आराधना में इस श्वेताम्बरीय कथा के उल्लेख को प्रेमी जी ने शिवार्य के यापनीयसंघी होने का हेतु माना है।

**दिगम्बरपक्ष**

प्रेमी जी ने उपर्युक्त विचार 'जैन साहित्य और इतिहास' के प्रथम संस्करण में व्यक्त किये हैं। बाद में उन्हें पता चला कि मेतार्य मुनि की कथा हरिषेणकृत बृहत्कथाकोश में भी उपलब्ध है।[११४] तब उन्होंने उक्त ग्रन्थ के द्वितीय संस्करण में यह वाक्य हटा दिया कि ''मेरी समझ में इस ढंग की कथा दिगम्बरसम्प्रदाय में नहीं है'' और यह वाक्य जोड़ दिया कि ''हरिषेणकृत कथाकोश में मेतार्य मुनि की कथा है, परन्तु उसमें श्वेताम्बरकथा से बहुत भिन्नता है।''[११५] यह भी ध्यान देने योग्य है कि प्रेमी जी ने अपने उपर्युक्त ग्रन्थ में हरिषेण को दिगम्बर ही माना है।[११६]

अब प्रश्न है कि जब मेतार्य मुनि की कथा दिगम्बर-साहित्य में भी उपलब्ध है और उसका स्वरूप श्वेताम्बरीय कथा से बहुत भिन्न है, तब भगवती-आराधना में उल्लिखित इस कथा को प्रेमी जी ने श्वेताम्बरीय कथा का उल्लेख कैसे मान लिया? और श्रीमती कुसुम पटोरिया एवं डॉ० सागरमल जी ने भी उनकी बात को बिना स्वयं छान-बीन किये कैसे स्वीकार कर लिया? विद्वज्जनों की इस प्रवृत्ति पर आश्चर्य और खेद ही प्रकट किया जा सकता है।

बृहत्कथाकोश-गत **मेतार्यमुनि-कथा** की श्वेताम्बरीय कथा से जो अत्यन्त भिन्नता है, वह दर्शनीय है—

१. श्वेताम्बरीय कथा में मेतार्यमुनि को चाण्डलिनी-पुत्र कहा गया है, लेकिन **बृहत्कथाकोश** के १०५ वें **हस्तकश्रेष्ठि-कथानक** में उन्हें राजश्रेष्ठी का पुत्र और स्वयं राजश्रेष्ठी बतलाया गया है—

---

११४. जैन साहित्य और इतिहास (प्रथम संस्करण) / पृष्ठ ५७१।
११५. वही (द्वितीय संस्करण) / पृ. ६९-७०।
११६. वही (प्रथम संस्करण) / पृ. ४४६।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

**मेघदत्ततनूजोऽहं मेदज्जाख्यो नरेश्वर।**
**जातो भवत्प्रसादेन राजश्रेष्ठी महाधनः॥ २३४॥**

२. श्वेताम्बरकथा में मेतार्य का सवस्त्र मुनि होना निर्विवाद है, किन्तु **बृहत्कथाकोश** के **हस्तकश्रेष्ठि-कथानक** में उन्हें दिगम्बरमुनि के रूप में चित्रित किया गया है। जब अच्युतेन्द्र गृहस्थावस्था में उनसे बार-बार मुनिदीक्षा लेने का आग्रह करता है, तब वे कुपित होकर उससे कहते हैं—"कौन हो तुम? क्या नाम है तुम्हारा? कहाँ रहते हो तुम, जो मेरे पास बार-बार आकर ऐसा कहते हो? इन देवोपम भोगों को छोड़कर **नंगा** होने से क्या फायदा? ऐसा कौन बुद्धिमान् पुरुष होगा जो घर में ही सब कुछ उपलब्ध होने पर भी भिक्षा के लिए गली-गली भटकता फिरे?" देखिए—

**पूर्णेषु द्वादशाब्देषु देवः सम्प्राप्य तं जगौ।**
**मेदज्ज कुरु जैनेन्द्रं तपो निवृत्तिकारणम्॥ १९७॥**

**देववाक्यं समाकर्ण्य मेदज्जोऽमरकुञ्जरम्।**
**बभाण भासुराकारः कोपलोहितलोचनः॥ १९८॥**

**कोऽसि त्वं वद किं नाम क्व वास्तव्यो महान् किल।**
**भूयो भूयोऽपि मां प्राप्य येनेदं भाषसे बुध॥ १९९॥**

**हित्वा देवोपमान् भोगान् नग्नत्वेन करोमि किम्।**
**गृहसिद्धेन को नाम भिक्षां भ्रमति मूढधीः॥ २००॥**

यहाँ **'नग्नत्वेन करोमि किम्?'** (नग्न होकर मैं क्या करूँगा?) इन वचनों से स्पष्ट है कि अच्युतेन्द्र मेतार्य से दिगम्बरमुनि बनने का आग्रह करता है।

अन्त में जब मेतार्य को वैराग्य हो जाता है, तब वे अपने राजा सिंहवाहन के साथ श्रीधर्मगुरु से दैगम्बरी दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं, जैसा कि **उक्त कथानक** के निम्नलिखित श्लोकों में कहा गया है—

**मेदज्जोऽपि स्वपुत्रस्य श्रीदत्तस्य महात्मनः।**
**श्रेष्ठिपट्टं बबन्धोच्चैस्तदानीं भूपसाक्षिकम्॥ २५७॥**

**राजादिकस्य लोकस्य कृत्वा त्रेधा क्षमापणम्।**
**श्रीधर्मगुरु-सामीप्ये मेदज्जोऽशिश्रियत्तपः॥ २५८॥**

**तिलकश्रीस्तथा साध्वी कीर्तिषेणासमन्विता।**
**द्वात्रिंशच्छ्रेष्ठिसद्भार्याः सुव्रतान्ते प्रवव्रजुः॥ २५९॥**

**सिंहवाहन-भूपालो विषवाहन-सूनवे।**
**दत्त्वा राज्यश्रियं सर्वां सामन्तादिपुरस्सरम्॥ २६०॥**

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

**महावैराग्यसम्पन्नः सामन्तान्तःपुरान्वितः।**
**श्रीधर्मगुरुसामीप्ये दधौ दैगम्बरं तपः॥ २६१॥**

३. श्वेताम्बरीय कथा में कहा गया है कि मेतार्य मुनि भिक्षा के लिए सीधे स्वर्णकार के यहाँ गये, किन्तु **बृहत्कथाकोश** के उपर्युक्त कथानक में वर्णन है कि वे मध्याह्नवेला में आहारचर्या के समय घर-घर भ्रमण करते हुए स्वर्णकार के यहाँ पहुँचे और स्वर्णकार ने उनका प्रतिग्रहण (पड़गाहन) किया—

**गृहाद् गृहान्तरं भ्राम्यन् मेदज्जाख्यो महामुनिः।**
**तत्कलाद-गृहं प्राप प्रलम्बितभुजद्वयः॥ २६८॥**

**दृष्ट्वा स्वगृहमायातं चर्यामार्गेण योगिनम्।**
**मन्दं मध्याह्नवेलायां कलादोऽतिष्ठिपन्मुनिम्॥ २६९॥**

आहारचर्या की यह विधि दिगम्बरमतानुकूल है।

४. श्वेताम्बरीय कथा के अनुसार स्वर्णकार ने स्वर्ण के जौ बनाकर रखे थे, जिन्हें क्रौञ्च पक्षी ने आकर चुग लिया। किन्तु बृहत्कथाकोश में बतलाया गया है कि स्वर्णकार पद्मरागादि मणियों से राजा का मुकुट बना रहा था। उसी समय काकतालीयन्याय (दैवयोग) से एक मोर क्रीडा करता हुआ वहाँ आ पहुँचा और जिस समय स्वर्णकार मेतार्य मुनि का पड़गाहन कर भीतर गया, उसी समय मोर ने पद्मरागमणि को निगल लिया। यह दृश्य मुनि देख रहे थे। जब स्वर्णकार बाहर आया, तब उसे वह मणि दिखाई नहीं दिया। उसने मुनि से पूछा कि आपने यहाँ से किसी को मणि ले जाते हुए देखा है? मुनि मौनव्रत धारण किये हुए थे, इसलिए वे कुछ नहीं बोले। तब स्वर्णकार ने क्रोध में आकर मुनि पर यष्टिप्रहार किया। दैवयोग से वह मुनि को न लगकर मोर के गले में लगा, जिससे पद्मरागमणि मोर के गले से निकलकर बाहर टपक पड़ा। (बृ.क.को./हस्तकश्रेष्ठि-कथानक/श्लोक २७०-७७)।

५. श्वेताम्बरकथा में बतलाया गया है कि स्वर्णकार ने मेतार्य मुनि को बहुत कष्ट देकर भीगे चमड़े में कस दिया, जिससे उनका शरीरान्त हो गया और उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। इसके विपरीत बृहत्कथाकोशकार उपर्युक्त कथानक में कहते हैं कि उपसर्ग समाप्त होने पर मेतार्य मुनि आहार ग्रहण किये बिना ही कौशाम्बी नगरी से लगे हुए देवपाद नामक उत्तुंग पर्वत पर चढ़ गये और जीवनपर्यन्त आहारत्याग का नियम लेकर कायोत्सर्ग में स्थित हो गये। इस प्रकार स्थित रहने पर वे क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ हुए और पृथक्त्ववितर्क-वीचार शुक्लध्यान ध्याते हुए क्रमशः अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, और क्षीणकषाय गुणस्थानों को प्राप्त हुए। क्षीणकषाय गुणस्थान में एकत्ववितर्क-अवीचार ध्यान के द्वारा उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया। पश्चात् विहार

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

करते हुए खड्गवंश नामक पर्वत पर उनका निर्वाण हो गया। इस वृत्तान्त का वर्णन **हस्तकश्रेष्ठि-कथानक** के निम्नलिखित पद्यों में किया गया है—

**उपसर्गावसाने च तत्कलाद-गृहादरम्।**
**अकृताहारसम्बन्धो निर्जगाम स धीरधीः॥ २७८॥**

**कौशाम्बीकापुरं लग्नं देवपादाभिधं गिरिम्।**
**आरुरोह समुत्तुङ्गं भेदज्जाख्यो मुनिस्तदा॥ २७९॥**

**यावज्जीवं विधायात्र शरीराहारपूर्वकम्।**
**नियमं स मुनिर्धीरः कायोत्सर्गेण तस्थिवान्॥ २८०॥**

**एवं स्थित्वा मुनिस्तत्र क्षपकश्रेणिकारणात्।**
**आद्यं पृथक्त्ववीचारं शुक्लध्यानं प्रविष्टवान्॥ २८१॥**

**तच्छुक्लध्यानयोगेन सूक्ष्मादौ साम्परायिके।**
**स्थित्वा स्थाने ददाहायं मोहनीयं विशेषतः॥ २८२॥**

**ततः क्षीणकषायाख्यस्थाने स्थित्वा सधीरधीः।**
**ध्यानमेकत्ववीचारं द्वितीयं शुक्लमाश्रितः॥ २८३॥**

**अयमेकत्ववीचारध्यानयोगेन सत्वरम्।**
**अन्तरायं निहन्ति स्म कर्म चावरणद्वयम्॥ २८४॥**

**सयोगिस्थानमाप्तस्य मेदज्जाख्यमुनेरम्।**
**केवलज्ञानमुत्पन्नं लोकालोकावलोकनम्॥ २८५॥**

**मेदज्जकेवली कृत्वा विहारं केवलस्य सः।**
**पर्वते खड्गवंशाख्ये निर्वाणमगमत्पुनः॥ ३३४॥**

इस वर्णन से स्पष्ट होता है कि श्वेताम्बरीय कथा में मेतार्य मुनि को जिस ढंग से (कायोत्सर्ग, क्षपकश्रेणी, शुक्लध्यान और उच्चतर गुणस्थानों की प्राप्ति के बिना) केवलज्ञान और निर्वाण की उपलब्धि बतलायी गयी है, वह दिगम्बरजैन-सिद्धान्त के सर्वथा विरुद्ध है, किन्तु बृहत्कथाकोश में जिस रीति से बतलायी गयी है, वह दिगम्बरमत के सर्वथा अनुकूल है। इस प्रकार हम देखते हैं कि दिगम्बरसाहित्य में भी मेतार्य मुनि की कथा है और वह दिगम्बरमतानुरूप है। हरिषेण ने कहा है कि उन्होंने आराधनाग्रंथ से कथाएँ उद्धृत कर कथाकोश का निर्माण किया है।[११७] इससे स्पष्ट होता है कि

---

११७. आराधनोद्धृतः पथ्यो भव्यानां भावितात्मनाम्।
हरिषेणकृतो भाति कथाकोशो महीतले॥ बृहत्कथाकोश/प्रशस्ति/श्लोक ८।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

'भगवती-आराधना' आदि आराधना-ग्रन्थों में जो कथाएँ हैं, अथवा (अनुपलब्ध आराधनाग्रन्थों में) रही होंगी, वे दिगम्बरपरम्परा की ही कथाएँ हैं। अतः भगवती-आराधना में उल्लिखित मेतार्य मुनि की कथा भी दिगम्बरसाहित्य की ही कथा है, उसे श्वेताम्बरीय कथा मानने का कोई आधार नहीं है। फलस्वरूप उसे श्वेताम्बरीय कथा मानना असत्य मान्यता है। अतः इस हेतु के असत्य होने से इसके आधार पर किया गया निर्णय भी असत्य है। अर्थात् भगवती-आराधना यापनीयग्रन्थ नहीं है, अपितु दिगम्बरग्रन्थ है। आश्चर्य तो यह है कि प्रेमी जी को जब यह पता चल गया कि दिगम्बरग्रन्थ बृहत्कथाकोश में भी मेतार्य मुनि की कथा है और वह दिगम्बरमत के सर्वथा अनुरूप है, तब भी उन्होंने अपने ग्रन्थ के द्वितीय संस्करण में इस हेतु को निरस्त नहीं किया।

## १३
## 'विजहना-विधि' दिगम्बरपरम्परानुकूल

### यापनीयपक्ष

प्रेमी जी—"आराधना का चालीसवाँ 'विजहना' नामक अधिकार भी विलक्षण और दिगम्बर-सम्प्रदाय के लिए अभूतपूर्व है, जिसमें मुनि के मृत शरीर को रात्रिभर जागरण करके रखने की और दूसरे दिन किसी अच्छे स्थान में वैसे ही (बिना जलाये) छोड़ आने की विधि वर्णित है। अन्य किसी दिगम्बरग्रन्थ में अभी तक यह पारसी लोगों जैसी विधि देखने में नहीं आई है।" (जै.सा.इ./प्र.सं./पृ.५९)।

### दिगम्बरपक्ष

इन्हीं प्रेमी जी ने अपने एक पूर्व लेख में इस विधि का विस्तार से वर्णन किया है और स्वयं उन्होंने इसका औचित्य इन शब्दों में प्रतिपादित किया है—

"जहाँ तक हम जानते हैं, बहुत कम लोगों को यह मालूम होगा कि पारसियों के समान जैन साधुओं का शरीर भी पूर्वकाल में खुली जगह में छोड़ दिया जाता था और उसे पशु-पक्षी भक्षण कर जाते थे। वास्तव में सर्वथा स्वावलम्बशील साधुसमुदाय के लिए, जो जनहीन जंगल-पहाड़ों के रास्ते हजारों कोस विहार करता था, इसके सिवाय और विधि हो ही नहीं सकती थी। श्वेताम्बर-सम्प्रदाय के विद्वानों से मालूम हुआ कि उनके ग्रन्थों में भी मुनियों के शवसंस्कार की पुरातन विधि यही है।"[११८]

---

११८. पं० नाथूराम जी प्रेमी : 'भगवती आराधना और उसकी टीकाएँ'/ 'अनेकान्त'/ वर्ष १/ किरण ३/ माघ, वीर नि.सं. २४५६/ पृष्ठ १५१।

डॉ० सागरमल जी ने भी लिखा है कि "भगवती आराधना में विजहना (मृतक शरीर को जंगल में रख देने) की जो चर्चा है वह प्रकीर्णकों में तो नहीं है, किन्तु भाष्य और चूर्णि में है।" (जै.ध.या.स./पृ.१३०)।

माननीय पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री भी विजहनाविधि के औचित्य को दर्शाते हुए लिखते हैं—"उस समय का विचार कीजिए जब बड़े-बड़े साधुसंघ वनों में विचरते थे। उस समय किसी साधु का मरण हो जाने पर वन में शव को रख देने के सिवाय दूसरा मार्ग क्या था? वे न जला सकते थे, न जलाने का प्रबंध कर सकते थे। अत: उसका सम्बन्ध किसी सम्प्रदाय-विशेष से नहीं है। यह तो सामयिक परिस्थिति और प्रचलन पर ही निर्भर है।" (भ.आ./शोलापुर/प्रस्ता./पृ.३६)।

'विजहना' के आधार पर भगवती-आराधना को यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने का 'प्रेमी' जी का तर्क उनके ही पूर्ववचनों से खंडित हो जाता है। और श्वेताम्बरग्रंथों में भी विजहना-विधि का उल्लेख है, इससे सिद्ध होता है कि यह संघभेद से पूर्व की विधि है, जो संघविभाजन के बाद दोनों सम्प्रदायों में कुछ समय तक चलती रही। और मेरा ख्याल है कि यह विधि प्राचीनकाल में अन्य सम्प्रदायों में भी प्रचलित रही होगी। अत: यह एक सामान्य प्रथा थी, कम से कम दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों में तो इसके प्रमाण मिलते ही हैं। अत: यह दिगम्बरों में नहीं थी, केवल श्वेताम्बरों और यापनीयों में थी, ऐसा तर्क कर भगवती-आराधना को यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने का प्रयास सत्य का अपलाप मात्र है। हाँ, यदि विजहनाविधि यापनीय-सम्प्रदाय की ही विशिष्टता होती, तो भगवती-आराधना में उसका उल्लेख होने से कहा जा सकता था कि वह यापनीयसम्प्रदाय का ग्रन्थ है। किन्तु प्रेमी जी ने इसका कोई प्रमाण नहीं दिया कि विजहनाविधि यापनीयसम्प्रदाय की ही विशिष्टविधि थी। प्रमाण है भी नहीं। अत: बिना प्रमाण के उसे यापनीयों की विशिष्टविधि मान लेना इतिहास-निर्धारण की वस्तुनिष्ठ पद्धति नहीं है।

विक्रम की १५वीं शताब्दी (१४४०-१५३०) में हुए **अपभ्रंश-भाषा** के दिगम्बर जैन **महाकवि रइधू** ने अपने **'भद्रबाहुचरित्र'** (भद्रबाहु-चाणक्य-चन्द्रगुप्त-कथानक) नामक काव्य में लिखा है कि जब श्रुतकेवली भद्रबाहु द्वादशवर्षीय दुर्भिक्ष की आशंका से अपने शिष्यों के साथ दक्षिणापथ को जा रहे थे, तब चलते-चलते एक अटवी में ठहरे। वहाँ आकाशवाणी ने घोषणा की, कि उनका समाधिमरण उसी अटवी में होगा। तब उन्होंने अपने शिष्य विशाखनन्दी के नेतृत्व में समस्त संघ को दक्षिण की ओर विसर्जित कर दिया तथा वे वहीं रह गये। मुनि चन्द्रगुप्त भी गुरु की सेवा के लिए वहाँ रुक गये। कुछ समय बाद श्रुतकेवली भद्रबाहु ने धर्मध्यान करते हुए एक

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

गुफा में प्राणों का परित्याग कर दिया। मुनि चन्द्रगुप्त ने अपने गुरु का शव उठाकर एक शिलातल पर रख दिया और गुफा की दीवार पर उनके चरणचिह्न उत्कीर्ण कर उनकी उपासना करते हुए वहीं स्थित रहे।[११९]

यह कथानक इस बात का प्रमाण दे देता है कि प्राचीन काल में दिगम्बर-परम्परा में मुनियों के शव को उनके शिष्यों या संघस्थ मुनियों के द्वारा शिलातल पर रख दिया जाता था, जिसे पशुपक्षी खाकर समाप्त कर देते थे। यही उनके अन्तिम संस्कार की विधि थी। इसी का नाम विजहना है।

बीसवीं सदी ई० के **आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज** ने भी अपने शव की विजहना का आदेश दिया था। **नवभारत टाइम्स, दिल्ली** के सहायक सम्पादक **श्री पूर्ण सोमसुन्दरम्** का '**जैनगजट**' के **आचार्य-शान्तिसागर-श्रद्धाञ्जलि-अंक** में '**स्वर्ग के सोपानों पर**' शीर्षक से निम्नलिखित संस्मरण प्रकाशित हुआ था—

"१७ अगस्त (१९५५) को आचार्यश्री जब यम-सल्लेखना महाव्रत की घोषणा कर चुके थे, तब उनके भक्तों के मन में स्वभावतः यह प्रश्न उठा कि स्वर्गारोहण के बाद महाराज के शरीर का क्या किया जाय? श्री माणिकचन्द्र, वीरचन्द्र और श्री बालचन्द्र ने निवेदन किया—

"महाराज! अपनी कोई इच्छा या आदेश हो, तो बतायें।"

आचार्यश्री ने मुस्कराकर कहा "बताऊँ तो पूरा करोगे?"

"अवश्य! आज्ञा कीजिए" भक्तों ने कहा।

"अच्छी तरह पुनः विचार कर लो । बाद में बदलना मत," आचार्यश्री ने कहा।

भक्तों ने जब पुनः आश्वासन दिया, तब आचार्य महाराज बोले, "देहविसर्जन के बाद मेरे शरीर को किसी नदी के निर्जन तट पर या किसी पर्वत के शिखर पर एकान्त स्थान पर छोड़ दो।"

सुनकर भक्त लोग सन्न रह गये। बालचन्द्र जी ने कहा—"महाराज! यह क्रम तो केवल मुनिसंघ के लिए नियत है। हम तो श्रावक हैं। हम पर यह आज्ञा कैसे लागू हो सकती है?"

---

११९. भद्दबाहु चेयणि झाएप्पिणु धम्मज्झाणँ पाण-चएप्पिणु।
गउ सुरहरि रिसि सुयकेवलि तासु कलेवरु ठविउ सिलायलि॥
गुरुहुँ पाय गुरुभित्तिहिँ लिहियइँ णियचित्तंतरम्मि स णिहियइँ।
चंदगुत्ति संठिउ सेवंतउ गुरुहुँ विणउ तियलोयमहंतउ॥ १६॥ भद्रबाहुचरित्र/पृ.३२।
सम्पादक-डॉ० राजाराम जैन/ प्रकाशक-दिगम्बर जैन युवक-संघ / सन् १९९२।

"तो फिर अपनी इच्छानुसार करो। निर्दोष (जीव या घासफूसरहित) स्थान पर बिना आडम्बर के दाहकर्म कर दो। स्मारक बगैरह कुछ नहीं चाहिए।" महाराज ने स्वीकृति दी।

"भीष्मपितामह की भाँति मरण की प्रतीक्षा करते हुए शरीर की दाहक्रिया के सम्बन्ध में इस प्रकार निर्ममता के साथ आदेश देना आचार्यश्री जैसे वीतरागियों के लिए ही संभव था।"

इस प्रकार विजहना दिगम्बर-परम्परा में प्रचलित थी। फिर भी उसे दिगम्बर-परम्परा के प्रतिकूल बतलाकर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि भगवती-आराधना में उसका उल्लेख होने से वह दिगम्बरग्रन्थ नहीं, अपितु यापनीयग्रन्थ है। यतः इस निष्कर्ष का आधारभूत हेतु असत्य है, अतः निष्कर्ष भी असत्य है। निष्कर्ष के असत्य होने से सिद्ध है कि भगवती-आराधना यापनीयग्रन्थ नहीं है, दिगम्बरग्रन्थ ही है।

## १४
## भद्रबाहु-समाधिमरण बृहत्कथाकोश में

### यापनीयपक्ष

प्रेमी जी—"नम्बर १५४४ की गाथा[१२०] में कहा है कि घोर अवमौदर्य या अल्प भोजन के कष्ट से बिना संक्लेशबुद्धि के भद्रबाहु मुनि उत्तम स्थान को प्राप्त हुए। परन्तु दिगम्बर-सम्प्रदाय की किसी भी कथा में भद्रबाहु के इस ऊनोदर-कष्ट के सहन का उल्लेख नहीं है।" (जै.सा.इ./प्र.सं./पृ.५९)।

### दिगम्बरपक्ष

इसका समाधान माननीय पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री ने किया है। वे लिखते हैं—"हरिषेण-कथाकोश सब कथाकोशों से प्राचीन है। इसमें १३१ नम्बर में भद्रबाहु की कथा है। जब मगध में दुर्भिक्ष पड़ा, तो वह सम्राट् चन्द्रगुप्त के साथ दक्षिणापथ को चले। आगे लिखा है—

**भद्रबाहुमुनिर्धीरो भय-सप्तक-वर्जितः।**
**पम्माक्षुधाश्रमं तीव्रं जिगाय सहसोत्थितम्॥ ४२॥**

---

१२०. ओमोदरिए घोराए भद्दबाहू असंकिलिट्ठमदी।
घोराए विगिंच्छाए पडिवण्णो उत्तमं ठाणं॥ १५३९॥ भगवती-आराधना (फलटण एवं जै. सं.सं.सं शोलापुर प्रकाशन)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

**प्राप्य भाद्रपदं देशं श्रीमदुज्जयिनीभवम्।**
**चकारानशनं धीरः स दिनानि बहून्यलम्॥ ४३॥**

**आराधनां समाराध्य विधिना स चतुर्विधाम्।**
**समाधिमरणं प्राप्य भद्रबाहुर्दिवं ययौ॥ ४४॥**

"अर्थात् सात भयों से रहित भद्रबाहु मुनि ने सहसा उत्पन्न हुए भूख-प्यास के श्रम को जीता और उज्जयिनी-सम्बन्धी भाद्रपद देश में पहुँचकर बहुत समय तक अनशन किया तथा चार प्रकार की आराधना करके समाधिमरण को प्राप्त हो स्वर्ग गये।

"इस गाथा से तो दिगम्बर-मान्यता की ही पुष्टि होती है कि मगध में दुर्भिक्ष पड़ने पर भद्रबाहु सम्राट् चन्द्रगुप्त के साथ दक्षिणापथ चले गये थे। श्वेताम्बर ऐसा नहीं मानते। इसी से 'मरणसमाधि' आदि में भद्रबाहु का उदाहरण नहीं है। अतः (पं० नाथूराम जी प्रेमी का) उक्त कथन भी ठीक नहीं है।" (भ. आ./जै. सं. सं. सं./शोलापुर/प्रस्ता./पृ.३६)।

हरिषेण दिगम्बराचार्य थे, यह उल्लेख 'जैन साहित्य और इतिहास' (प्र.सं./पृ.४४६) में स्वयं प्रेमी जी ने किया है।

इस तरह दिगम्बरग्रन्थ में भद्रबाहु के ऊनोदर-कष्टसहन का अथवा अनशन-कष्टसहन का उल्लेख है, अतः 'भगवती-आराधना' में उसका वर्णन होने से वह यापनीयग्रन्थ सिद्ध नहीं होता। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उसे यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने के लिए बतलाया गया उपर्युक्त हेतु भी असत्य है।

## १५
## 'आचार,' 'जीतकल्प' शास्त्रों के नाम नहीं

**यापनीयपक्ष**

प्रेमी जी—"नं० ४२८ की गाथा[१२१] में आधारवत्त्व गुण के धारक आचार्य को **कप्पववहारधारी** विशेषण दिया है और कल्पव्यवहार, निशीथसूत्र श्वेताम्बर-सम्प्रदाय के

---

१२१. चोद्दसदसणवपुव्वी महामदी सायरोव्व गंभीरो।
कप्पववहारधारी होदि हु आधारवं णाम॥ ४२८॥ भगवती-आराधना।
(जैन संस्कृति संरक्षक संघ शोलापुर एवं हीरालाल खुशालचन्द दोशी फलटण द्वारा प्रकाशित प्रतियों में गाथा क्र. ४३० है।)

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। इसी तरह ४०७ नम्बर की गाथा में[१२२] निर्यापक गुरु की खोज के लिए परसंघ में जानेवाले मुनि की **आयार-जीद-कप्पगुणदीवणा** होती है। विजयोदया-टीका में इस पद का अर्थ किया है—'**आचारस्य जीतसंज्ञितस्य कल्पस्य गुणप्रकाशना।**' और पं० आशाधर की टीका में लिखा है—"**आचारस्य जीदस्य कल्पस्य च गुणप्रकाशना। एतानि हि शास्त्राणि निरतिचाररत्नत्रयतामेव दर्शयन्ति।**" पं० जिनदास शास्त्री ने हिन्दी अर्थ में लिखा है कि "आचारशास्त्र, जीतशास्त्र और कल्पशास्त्र इनके गुणों का प्रकाशन होता है।" अर्थात् तीनों के मत से इन नामों के शास्त्र हैं और यह कहने की जरूरत नहीं है कि आचारांग और जीतकल्प श्वेताम्बर-सम्प्रदाय के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। --- इन सब बातों से मेरा अनुमान है कि शिवार्य भी यापनीयसंघ के आचार्य होंगे।" (जै.सा.इ./प्र.सं./पृ.५९-६०)।

**दिगम्बरपक्ष**

"**आचारस्य जीदसंज्ञितस्य कल्पस्य च गुणप्रकाशना। एतानि हि शास्त्राणि निरतिचार-रत्नत्रयतामेव दर्शयन्ति।**" ये वाक्य विजयोदयाटीका (गा.४११/पृ.३१४) के हैं, जो पं० आशाधर जी द्वारा अपनी टीका में अनुकृत किये गये हैं। अर्थात् अपराजित सूरि के अनुसार भी 'आचार' और 'जीतकल्प' शास्त्रों के नाम हैं। किन्तु प्रस्तुत गाथा और उसकी उत्तरवर्ती गाथाओं के वर्ण्यविषय से ज्ञात होता है कि यहाँ 'आचार' और 'जीतकल्प' से इन नामों के शास्त्र अभिप्रेत नहीं हैं, अपितु क्षपक के चरण (आचरण) और करण (आवश्यक क्रियाएँ) अभिप्रेत हैं। गाथा में अन्य संघ के निर्यापक आचार्य के समीप जाने से क्षपक के जिन गुणों का प्रकाशन या दीपन होता है, उनका वर्णन किया गया है, न कि किन्हीं शास्त्रों के विषय के प्रकाशन का। यदि यहाँ यह अभिप्राय होता कि अन्य संघ के निर्यापक आचार्य के समीप जाने से आचारांग और जीतकल्प आदि शास्त्रों के अर्थ का प्रकाशन (ज्ञान) होता है, तो गाथा में 'गुण' के स्थान में 'अर्थ' शब्द का प्रयोग किया जाता। किन्तु सम्पूर्ण गाथा में क्षपक के ही विविध गुणों के प्रकाशन का कथन है। इसलिए यहाँ 'आचार' और 'जीतकल्प' से क्षपक के ही गुणविशेष विवक्षित हैं, जिनका विवरण उत्तर-गाथाओं में किया गया है। आचार का अर्थ तो स्पष्टतः 'आचरण' है। 'जीतकल्प' शब्द की व्याख्या श्वेताम्बर-कल्पसूत्र की कल्पकौमुदी नामक टीका में मिलती है। उसमें भगवान् महावीर को सम्बोधित करने

---

१२२. आयारजीदकप्पगुणदीवणा अत्तसोधिणिज्झंझा।
अज्जव-मद्दव-लाघव-तुट्ठी-पल्हादणं च गुणा॥ ४०७॥ भगवती-आराधना।
(जैन संस्कृति संरक्षक संघ शोलापुर एवं हीरालाल खुशालचन्द्र दोशी फलटण द्वारा प्रकाशित संस्करणों में गाथा क्र. ४११ है।)

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

के लिए आनेवाले लौकान्तिक देवों को **जीअकप्पिएहिं देवेहिं** कहा गया है और इसकी निरुक्ति "**जीतस्य अवश्यकरणीयस्याचारस्य कल्पिकैः कारकैर्देवैः**"[१२३] (गा. ४११/पृ.३१४) इस प्रकार की गई है। अर्थात् **जीत** का अर्थ है **अवश्य करने योग्य आचार। कल्प** शब्द का भी अर्थ **आचार** है—'**कल्पः साध्वाचारः।**'[१२४] और '**आयारजीदकप्पगुणदीवणा**' (गा.४११/ पृ.३१४) इस गाथा के आगे भगवती-आराधना में जो गाथाएँ हैं, उनसे स्पष्ट होता है कि **आचार** का अर्थ **चरण** (आचरण) और **जीतकल्प** का अर्थ **करण** (षडावश्यक) है, क्योंकि उन गाथाओं में कहा गया है कि संघ में आया हुआ मुनि और संघ में रहनेवाले मुनि एक-दूसरे के चरण और करण को जानने के लिए उनकी प्रतिलेखन, वचन, ग्रहण, निक्षेप, स्वाध्याय, विहार, भिक्षाग्रहण आदि क्रियाओं की परीक्षा करते हैं।[१२५] परीक्षा किस प्रकार करते हैं, इसका विस्तार से विवेचन **आवासय-ठाणादिसु** गाथा (४१४) की विजयोदयाटीका में किया गया है। अपराजित सूरि ने ४१३ वीं और ४१४ वीं गाथाओं की टीका में यह भी बतलाया है कि **चरण** का अर्थ है **समिति** और **गुप्ति** तथा **करण** का अर्थ है **आवश्यक** अर्थात् **सामायिक** आदि—

"**समितयो गुप्तयश्चरणशब्देनोच्यन्ते करणमित्यावश्यकानि गृहीतानि।**" (वि. टी./ गा.४१३)। "**अवश्यमेव संवरनिर्जरार्थिभिः कर्त्तव्यानि सामायिकादीनि आवश्यकान्युच्यन्ते।**" (वि.टी./गा.४१४)।

इस प्रकार दूसरे संघ में जाने पर जब उस संघ के मुनि आगन्तुक मुनि के आचार (चरण=गुप्तिसमिति) तथा जीतकल्प (करण=षडावश्यक) की परीक्षा करते हैं, तभी उसके इन गुणों का प्रकाशन (दीपना) होता है। अपने संघ के मुनि एक-दूसरे के चरण-करण से परिचित होते हैं, अतः इस प्रकार परीक्षा नहीं करते। इस तरह आचार और जीतकल्प मुनि के ही गुण हैं। गाथा में वर्णित अन्य गुण भी मुनि से ही सम्बन्धित हैं। जैसे अन्य संघ के निर्यापकाचार्य के पास जानेवाले मुनि की

---

१२३. कल्पसूत्र / कल्पकौमुदीवृत्ति/ पञ्चम क्षण / पृष्ठ ११०।
१२४. कल्पसूत्र / कल्पप्रदीपिकावृत्ति / पातनिका / गाथा १।
१२५. क— आगंतुग-वच्छव्वा पडिलेहाहिं तु अण्णमण्णेहिं।
अण्णोण्णचरणकरणं जाणणहेदुं परिक्खंति॥ ४१३॥ भगवती-आराधना।
वच्छव्वा=वास्तव्याः (संघ में रहनेवाले)।
ख—आवासयठाणादिसु पडिलेहणवयणगहणणिक्खेवे।
सज्झाए य विहारे भिक्खग्गहणे परिच्छंति॥ ४१४॥ भगवती-आराधना।

आत्मशुद्धि होती है, संक्लेश का अभाव होता है तथा आर्जव, मार्दव, लाघव, तुष्टि और प्रह्लाद, इन गुणों की अभिव्यक्ति होती है।''[१२६]

अतः उक्त गाथा में 'आचार' और 'जीतकल्प' शब्दों से तन्नामक श्वेताम्बरशास्त्रों का अभिप्राय ग्रहण कर ग्रन्थकार शिवार्य को यापनीयसंघ से सम्बद्ध करना भ्रमजन्य चेष्टा है।

फिर भी यदि यह माना जाय कि वे शास्त्रों के ही नाम हैं, तो उन नामों का स्वरूप प्रामाणिक नहीं है। '**आयारजीदकप्पगुणदीवणा**' इत्यादि गाथा किंचित् परिवर्तन के साथ भगवती-आराधना (शोलापुर एवं फलटन-संस्करणों) में भी १३२ क्रमांक पर है। उसकी टीका में अपराजित सूरि ने अन्य व्याख्याकारों के मतानुसार 'आचार' और 'जीतकल्प' के स्थान में **आचारजीत** और **कल्प** नामक शास्त्रों का उल्लेख बतलाया है और 'आचारजीत' शब्द का अर्थ 'आचारशास्त्र में निर्दिष्टक्रम' किया है तथा जिसके द्वारा अपराध के अनुरूप दण्ड दिया जाता है, उस शास्त्र को 'कल्प' नाम से अभिहित किया है। एक अन्य मत का उल्लेख करते हुए कहा है कि **आचारजीत** का अर्थ है **आचार का क्रम** तथा **कल्प्यगुण** का अर्थ है **योग्यगुण**। अतः आचार के क्रम और योग्यगुणों का प्रकाशन **आचारजीद-कल्पगुणदीवणा** शब्द का अर्थ है—

''**आयारजीदकप्पगुणदीवणा-रत्नत्रयाचरणनिरूपणपरतया प्रथममङ्गमाचारशब्देनोच्यते। आचारशास्त्रनिर्दिष्टः क्रमः आचारजीदशब्देनोच्यते। कल्प्यते अभिधीयते येन अपराधानुरूपो दण्डः स कल्पस्तस्य गुणः उपकारस्तेन निर्वर्त्यत्वात्। अनयोः प्रकाशनम् 'आचारजीद-कप्पगुणदीवणा'। एतदुक्तं भवति—कायिको वाचिकश्च विनयः प्रवर्तमानः आचारशास्त्रनिर्दिष्टं क्रमं प्रकाशयति। कल्पोऽपि विनयं विनाशयतो दण्डयतो विनयं निरूपयति। तद्भयादयं प्रवर्त्यते इति कल्पसम्पाद्य उपकारः प्रकटितो भवति इति केषाञ्चिद् व्याख्यानम्। अन्ये तु वदन्ति—कल्पयते इति कल्प्यं योग्यं कल्प्या गुणाः कल्प्यगुणाः आचारक्रमस्य कल्प्यानां च गुणानां प्रकाशनम् आचारजीदकल्पगुणदीवणा-शब्देनोच्यते श्रुताराधना चारित्राराधना च कृता भवतीत्येतदाख्यातम् अनेनेति।**'' (वि.टी./भ.आ./गा.१३२/पृ.१७१)।

इस प्रकार 'आचार' और 'जीतकल्प' के स्थान में 'आचारजीत' और 'कल्प' अथवा 'कल्प्यगुण' नाम भी मान्य होने से 'आचारांग' और 'जीतकल्प' नामों के उल्लेख

१२६. ''अत्तसोधि = आत्मनः शुद्धिः, णिज्झंझा = सङ्क्लेशाभावः। न हि सङ्क्लेशवान् इत्थं दूरं प्रयातुमीहते। स्वदोषप्रकटनान्माया त्यक्ता भवत्येव, तत एव माननिरासो मार्दवम्। शरीरपरित्यागाहितबुद्धितया लाघवम्। कृतार्थोऽस्मीति तुष्टिर्भवति। प्रस्थितस्य प्रह्लादनं हृदयसुखं च स्वपरोपकाराभ्यां गमितः कालः, इत उत्तरं मदीय एव कार्ये प्रधाने उद्युक्तो भविष्यामि इति चिन्तया।'' विजयोदयाटीका / भगवती-आराधना / गा.४११/पृ.३१४।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

की मान्यता प्रामाणिक सिद्ध नहीं होती। अतः भगवती-आराधना में श्वेताम्बरशास्त्रों के उल्लेख की मान्यता निरस्त हो जाती है, क्योंकि श्वेताम्बर शास्त्रों के नाम 'आचारजीत' एवं 'कल्प' अथवा 'कल्प्यगुण' नहीं हैं, अपितु 'आचारांग' और 'जीतकल्प' हैं। पूर्वोक्त नाम दिगम्बरशास्त्रों के हैं, जो वर्तमान में 'मूलाचार,' 'छेदशास्त्र' आदि नामों से प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त 'आचारक्रम' और 'कल्प्यगुण' तो शास्त्रों के नाम ही नहीं हैं, अपितु क्षपक के गुणों के सूचक शब्द हैं।

भगवती-आराधना की **चोद्दस-दस-णवपुव्वी** गाथा (४३०) में **कप्पववहारधारी** का भी अर्थ कल्पव्यवहार अर्थात् प्रायश्चित्तशास्त्र को जाननेवाला है। यह शास्त्र अर्थात् प्रायश्चित्त के नियम दिगम्बरसाहित्य में भी हैं। अतः उसे केवल श्वेताम्बरशास्त्र ही मान लेना यथार्थ निर्णय नहीं है। आचार, जीतकल्प आदि को श्वेताम्बर-शास्त्र-वाचक तब माना जा सकता था, जब भगवती-आराधना में स्त्रीमुक्ति, सवस्त्रमुक्ति आदि श्वेताम्बरीय एवं यापनीय मान्यताओं का विरोध न होता। किन्तु इन मान्यताओं का विरोध पद-पद पर है। इससे सिद्ध है कि वह यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ नहीं है। और इसी से सिद्ध होता है कि उसमें उल्लिखित आचार, जीतकल्प आदि श्वेताम्बर-शास्त्रों के नाम नहीं हैं।

यतः उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि भगवती-आराधना में 'आचार', 'जीतकल्प' आदि श्वेताम्बरग्रन्थों का उल्लेख नहीं है, अतः उसे यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किया गया यह हेतु असत्य है कि उसमें इन श्वेताम्बरग्रन्थों का उल्लेख है। हेतु के असत्य होने से यह निर्णय भी असत्य है कि वह यापनीयग्रन्थ है।

पं० नाथूराम जी प्रेमी ने तर्कों की संख्या बढ़ाने के लिए कुछ ऐसे तर्क भी रखे हैं, जिनका मूलग्रन्थ से कोई सम्बन्ध नहीं है, विजयोदयाटीका से है। अतः वे मूलग्रन्थ के सम्प्रदाय के निर्णय में कार्यकारी नहीं हैं। वे भी भ्रान्तिजन्य हैं। अतः भ्रान्तिनिवारणार्थ आगे उनका निराकरण किया जा रहा है।

## १६
## 'अनुयोगद्वार' शास्त्र का नाम नहीं

**यापनीयपक्ष**

प्रेमी जी—"तीसरी गाथा की विजयोदयाटीका "**अनुयोगद्वारादीनां बहूनामुपन्यास-मकृत्वा दिङ्मात्रोपन्यासः**" आदि में 'अनुयोगद्वारसूत्र' का उल्लेख किया है।" (जै.सा.इ. /

द्वि.सं./पृ.७३)। यह एक श्वेताम्बरग्रन्थ का नाम है। मूलग्रन्थ की टीका में उसका उल्लेख हुआ है। अतः भगवती-आराधना यापनीयग्रन्थ है। डॉ० सागरमल जी ने भी इस हेतु का उल्लेख किया है। (जै.ध.या.स./पृ.१२९)।

**दिगम्बरपक्ष**

यहाँ 'अनुयोगद्वार' शास्त्र का नाम नहीं है, अपितु जिन विभिन्न द्वारों से वस्तु का निरूपण किया जाता है उन सत्, संख्या, क्षेत्र, आदि निरूपणद्वारों को अनुयोगद्वार कहा गया है। इसीलिए टीकाकार ने कहा है कि विस्तार से कथन मन्दबुद्धियों के लिए दुरवगम होता है, अतः विविध अनुयोगद्वारों आदि का उपन्यास न करके संक्षेप में निरूपण किया गया है।[१२७] उन्होंने नमस्कार का निरूपण करते समय स्पष्ट भी किया है कि निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान इन अनुयोगद्वारों से नमस्कार का निरूपण किया जा रहा है—"**निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थिति-विधानैरनुयोगद्वारैर्निरूप्यते।**" (वि.टी./भ.आ./गा.'आराधणापुरस्सर'७५२/पृ.४७१)। इस प्रकार भगवती-आराधना में या उसकी विजयोदयाटीका में श्वेताम्बरग्रन्थ 'अनुयोगद्वारसूत्र' का उल्लेख नहीं है, अतः उसे यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किया गया यह हेतु भी असत्य है।

## १७

## आवश्यकसूत्र की गाथा मूलग्रन्थ में उद्धृत नहीं

**यापनीयपक्ष**

प्रेमी जी—"भगवती-आराधना (गाथा ११६, पृ. २७७) में[१२८] '**पंचवदाणि जदीणं**'[१२९] आदि आवश्यकसूत्र की गाथा उद्धृत की है।" इसी प्रकार '**देसामसियसुत्तं**'

---

१२७. "वस्तु बहूपन्यस्तं दुरवगमं मन्दबुद्धीनामिति तदनुग्रहाय स्वल्पोपन्यासः।--- अनुयोगद्वारादीनां बहूनामुपन्यासमकृत्वा दिङ्मात्रोपन्यासः प्रस्तुतस्यार्थसंक्षेपः।" विजयोदया टीका / भगवती-आराधना / गा.३ / पृ.१२।

१२८. फलटण एवं जैन संस्कृति संरक्षक संघ शोलापुर के संस्करणों में उक्त गाथा क्रमांक ११८ पर है।

१२९. "तथावश्यकेऽप्युक्तम्—
पंचवदाणि जदीणं अणुव्वदाइं च देसविरदाणं।
ण हु सम्मत्तेण विणा तो सम्मत्तं पढमदाए॥" वि.टी./भ.आ./गा.११८/पृ.१५९।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

गाथा (११२३)[१३०] की टीका में **'हरिततणोसहिगुच्छा'** आदि दो गाथाएँ बृहत्कल्पसूत्र से ग्रहण की गई हैं। अतः श्वेताम्बरग्रन्थों की गाथाएँ उद्धृत होने से यह यापनीयग्रन्थ है। (जै.सा.इ./ द्वि.सं./पृ.७३)।

**दिगम्बरपक्ष**

उपर्युक्त गाथाएँ भगवती-आराधना में नहीं, अपितु उसकी टीका में उद्धृत की गई हैं। इससे मूलग्रन्थ को यापनीयग्रन्थ नहीं कहा जा सकता। टीकाकार ने तो अन्य ग्रन्थों से भी अनेक नीति के श्लोक उद्धृत किये हैं, जैसे **'संसारसागरम्मि'** (४४८) इस गाथा की टीका में भर्तृहरि के शृंगारशतक से **'स्त्रीमुद्रां मकरध्वजस्य जयिनीं'** यह श्लोक। तब क्या टीकाकार ने जिस-जिस सम्प्रदाय के ग्रन्थ से कोई श्लोक उद्धृत किया है, उसी-उसी सम्प्रदाय का उन्हें मान लिया जायेगा? यदि टीकाकार श्वेताम्बरग्रन्थ से गाथा उद्धृत करने के कारण यापनीय हो जाते हैं और उसके कारण मूलग्रन्थकार भी यापनीय हो जाते हैं, तो टीकाकार ने टीका में आचार्य कुन्दकुन्द[१३१] और समन्तभद्र के ग्रन्थों से भी उद्धरण दिये हैं, इससे तो वे और मूलग्रन्थकार दिगम्बर ही सिद्ध होते हैं। मूलग्रन्थकार ने तो कुन्दकुन्द की अनेक गाथाएँ अपने ग्रन्थ में ही ग्रहण कर ली हैं। अतः प्रेमी जी का उपर्युक्त हेतु प्रकरणसम हेत्वाभास है। इसलिए उसके आधार पर किया गया यह निर्णय भी भ्रान्तिपूर्ण है कि भगवती-आराधना यापनीयग्रन्थ है।

## १८
## आचारांगादि नाम दिगम्बर परम्परा में भी प्रसिद्ध

**यापनीयपक्ष**

प्रेमी जी—**'अंगसुदे य बहुविधे'** [१३२] इस गाथा (४९९) की टीका में अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य श्रुत के आचारांग, सूत्रकृतांग, सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव आदि भेदों का वर्णन किया गया है। ये नाम श्वेताम्बर-परम्परा के आगमों के हैं। अतः टीका में इनका उल्लेख होने से मूलग्रन्थ भी यापनीय सिद्ध होता है। (जै.सा.इ./द्वि.सं./पृ.७३)।

---

१३०. फलटण एवं जैन संस्कृति संरक्षक संघ शोलापुर के संस्करणों में उक्त गाथा क्रमांक १११७ पर है।

१३१. देखिए, अध्याय १०/ प्रकरण १/ शीर्षक ९.२।

१३२. फलटण एवं जै.सं.सं.सं. शोलापुर के संस्करणों में उक्त गाथा का क्रमांक ५०१ है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

**दिगम्बरपक्ष**

अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य श्रुत के आचारांगादि उपर्युक्त नाम दिगम्बरपरम्परा में भी प्रसिद्ध हैं। अतः प्रेमी जी का उपर्युक्त हेतु साधारणानैकान्तिक हेत्वाभास है। इसलिए उसके द्वारा किया गया यह निर्णय भी असत्य है कि भगवती-आराधना यापनीयग्रन्थ है।

इस तरह हम देखते हैं कि यापनीय-पक्षधर विद्वानों ने भगवती-आराधना को यापनीयकृति सिद्ध करने के लिए जो हेतु प्रस्तुत किये हैं, उनमें से अनेक का तो अस्तित्व ही नहीं है अर्थात् वे असत्य हैं, और अनेक में हेतु का लक्षण घटित नहीं होता, कोई प्रकरणसम हेत्वाभास है, कोई साधारणानैकान्तिक, तो कोई बाधितविषय। ऐसा कोई भी हेतु उपलब्ध नहीं, है, जिससे यह सिद्ध हो कि भगवती-आराधना यापनीयग्रन्थ है। जितने भी अन्तरंग और बहिरंग प्रमाण उपलब्ध होते हैं, वे उसे दिगम्बरग्रन्थ ही सिद्ध करते हैं। अतः वह दिगम्बर ग्रन्थ ही है और उसके कर्त्ता शिवार्य दिगम्बराचार्य ही हैं, इसमें सन्देह के लिए स्थान नहीं है।

## उपसंहार

### दिगम्बरग्रन्थ होने के प्रमाण सूत्ररूप में

अंत में उन समस्त प्रमाणों को सूत्ररूप में प्रस्तुत किया जा रहा है, जिनसे सिद्ध होता है कि भगवती-आराधना यापनीयपरम्परा का नहीं, अपितु दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ है। वे इस प्रकार हैं—

१. भगवती-आराधना में सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति, परतीर्थिकमुक्ति एवं केवलिभुक्ति, इन यापनीय-मान्यताओं का निषेध किया गया है।

२. परिग्रह की परिभाषा यापनीयमत के विरुद्ध है।

३. वेदत्रय और वेदवैषम्य स्वीकार किये गये हैं, जो यापनीयों को अमान्य हैं।

४. बंध और मोक्ष की सम्पूर्ण व्यवस्था गुणस्थानाश्रित बतलायी गयी है। यह यापनीयमत में स्वीकृत गृहस्थमुक्ति, परतीर्थिक-मुक्ति एवं द्रव्यस्त्री-मुक्ति के विरुद्ध है।

५. मुनि के लिए दिगम्बरमत में मान्य मूलगुणों और उत्तरगुणों का विधान किया गया है।

६. लोच के द्वारा ही केशत्याग का नियम निर्धारित किया गया है। यापनीय-मान्य श्वेताम्बर-आगमों में छुरे या कैंची से भी मुण्डन की अनुमति दी गई है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

७. आहार में मद्य, मांस और मधु के ग्रहण का सर्वथा निषेध किया गया है, जब कि यापनीयमान्य श्वेताम्बर-आगमों में वे अपवादरूप से ग्राह्य माने गये हैं।।

८. भगवती-आराधना में मुनियों के लिए अभिग्रह का विधान किया गया है। यापनीय-मान्य श्वेताम्बर-आगमों में इसका अभाव है।

९. भगवती-आराधना में कुन्दकुन्द का अनुसरण किया गया है।

१०. इसकी सभी टीकाएँ दिगम्बरों द्वारा ही लिखी गई हैं।

११. भगवती-आराधना को दिगम्बराचार्यों ने प्रमाणरूप में स्वीकार किया है और उसके कर्त्ता शिवार्य के प्रति आदरभाव व्यक्त किया है।

१२. भगवती-आराधना की रचना यापनीयसंघ की उत्पत्ति से बहुत पहले हो चुकी थी।

✧✧✧

## तृतीय प्रकरण

# भक्तप्रत्याख्यान में स्त्री के लिए नाग्न्यलिंग नहीं

प्रसंगवश यहाँ एक दीर्घकालीन मिथ्याधारणा का निराकरण आवश्यक है। प्राय: सभी विद्वानों, मुनियों एवं आर्यिकाओं की धारणा है कि भगवती-आराधना में भक्त-प्रत्याख्यान (सल्लेखना में संस्तारूढ़ होने) के समय आर्यिकाओं और श्राविकाओं के लिए मुनि के समान नाग्न्यलिंग ग्रहण करने का विधान किया गया है। किन्तु यह धारणा भ्रान्तिपूर्ण है।

**भगवती-आराधना** की निम्नलिखित गाथा में स्त्रियों के द्वारा भक्त-प्रत्याख्यान (सल्लेखना) के समय धारण किये जाने योग्य लिङ्गों का वर्णन किया गया है—

**इत्थीवि य जं लिंगं दिट्ठं उस्सग्गियं व इदरं वा।**
**तं तत्थ होदि हु लिंगं परित्तमुवधि करेंतीए॥ ८०॥**

**अनुवाद**—"स्त्रियों के भी जो औत्सर्गिक और आपवादिक लिङ्ग आगम में कहे गये हैं, वे ही भक्तप्रत्याख्यान के समय में भी उनके लिङ्ग होते हैं। आर्यिकाओं का एक-साड़ीमात्र-अल्पपरिग्रहात्मक लिङ्ग औत्सर्गिक लिङ्ग है और श्राविकाओं का बहुपरि-ग्रहात्मक लिङ्ग आपवादिकलिङ्ग है।"

इस अर्थ का समर्थन टीकाकार अपराजित सूरि के अधोलिखित वचनों से होता है—"**स्त्रियोऽपि यल्लिङ्गं दृष्टमागमेऽभिहितम् औत्सर्गिकं तपस्विनीनाम् 'इदरं वां' श्राविकाणां 'तं' तदेव 'तत्थ' भक्तप्रत्याख्याने भवति। लिङ्गं तपस्विनीनां प्राक्तनम्। इतरासां पुंसामिव योज्यम्। यदि महर्द्धिका लज्जावती मिथ्यादृष्टिस्वजनाश्च तस्या: प्राक्तनं लिङ्गम्। विविक्ते त्वावसथे उत्सर्गलिङ्गं वा सकलपरिग्रहत्यागरूपम्। उत्सर्गलिङ्गं कथं निरूप्यते स्त्रीणामित्यत आह—तदुत्सर्गलिङ्गं स्त्रीणां भवति 'परित्तं' अल्पं 'उवधिं' परिग्रहं 'करेंतीए' कुर्वत्या:।**" (विजयोदया टीका / भगवती-आराधना गाथा ८०)।

**अनुवाद**—"स्त्रियों के भी जो लिङ्ग आगम में बतलाये गये हैं, अर्थात् तपस्विनियों (आर्यिकाओं) का औत्सर्गिक और श्राविकाओं का आपवादिक, वे ही भक्तप्रत्याख्यान में भी होते हैं। तपस्विनियों का लिङ्ग तो पूर्वगृहीत अर्थात् औत्सर्गिक (एक-साड़ीरूप अल्पपरिग्रहात्मक) ही होता है, श्राविकाओं का लिङ्ग पुरुषों के समान समझना चाहिए। अर्थात् श्राविका यदि अतिवैभवसम्पन्न है या लज्जाशील है अथवा उसके परिवारजन विधर्मी हैं, तो अविविक्त (सार्वजनिक) स्थान में उसे पूर्वगृहीत लिङ्ग अर्थात् बहु-परिग्रहात्मक अपवादलिङ्ग ही दिया जाना चाहिए, किन्तु विविक्त (एकान्त) स्थान में सकलपरिग्रहत्यागरूप उत्सर्गलिङ्ग दिया जा सकता है। यहाँ प्रश्न उठता है कि स्त्रियों के

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

लिए सकलपरिग्रहत्यागरूप उत्सर्गलिङ्ग कैसे निरूपित किया जा सकता है? उत्तर यह है कि परिग्रह को अल्प करने से अर्थात् साड़ीमात्र-अल्पपरिग्रह रखने से स्त्रियों का लिङ्ग उत्सर्गलिङ्ग कहा गया है।

उपर्युक्त गाथा और उसकी इस विजयोदयाटीका में कहीं भी यह उल्लेख नहीं है कि स्त्रियों को भक्तप्रत्याख्यान के समय एकान्तस्थान में मुनिवत् नग्नतारूप उत्सर्गलिङ्ग धारण करना चाहिए। उसे धारण करने की भ्रान्तधारणा पं० आशाधर जी की भ्रान्तिजनित व्याख्या से जनमी है। उन्होंने भगवती-आराधना पर मूलाराधनादर्पण नामक टीका रची है। उसमें उपर्युक्त गाथा की टीका में लिखा है—

**''औत्सर्गिकं तपस्विनीनां साटकमात्रपरिग्रहेऽपि तत्र ममत्व-परित्यागादुपचारतो नैर्ग्रन्थ्यव्यवहरणानुसरणात्। इतरम् अपवादिकं श्राविकाणां तथाविधममत्वपरित्यागाभावादुपचारतोऽपि नैर्गन्थ्यव्यवहारानवतारात्। 'तत्थ' तत्र भक्तप्रत्याख्याने सन्यासकाले इत्यर्थः। लिङ्गं तपस्विनीनामयोग्यस्थाने प्राक्तनम्। इतरासां पुंसामिवेति योज्यम्। इदमत्र-तात्पर्यं—तपस्विनी मृत्युकालेयोग्ये स्थाने वस्त्रमात्रमपि त्यजति अन्या तु यदि योग्यं स्थानं लभते। यदि च महर्द्धिका सलज्जा मिथ्यात्वप्रचुरज्ञातिश्च न तदा पुंवद्वस्त्रमपि मुञ्चति। नो चेत् प्राग्लिङ्गेनैव म्रियते। तथा चोक्तं—**

**यदौत्सर्गिकमन्यद्वा लिङ्गं दृष्टं स्त्रियाः श्रुते।**
**पुंवत्तदिष्यते मृत्युकाले स्वल्पीकृतोपधेः॥''**

(मूलाराधना/आश्वास २/गा.८१/पृ.२१०-२११)।

**अनुवाद**—''तपस्विनियों (आर्यिकाओं) के साड़ीमात्र का परिग्रह होने पर भी उसमें ममत्व का परित्याग कर देने से उनके उपचार से नैर्ग्रन्थ (सकलपरिग्रहत्याग) कहा गया है। अतः उनके लिङ्ग को औत्सर्गिक लिङ्ग कहते हैं। किन्तु श्राविकाएँ अपने वस्त्रादि में ममत्व का परित्याग नहीं करतीं, अतः उनके उपचार से भी नैर्ग्रन्थ्य नहीं कहा जा सकता। इसलिए उनका लिङ्ग आपवादिक लिङ्ग होता है। ये लिङ्ग उनके लिए भक्तप्रत्याख्यान काल अर्थात् संन्यासकाल (सल्लेखनाकाल) में ग्रहण करने योग्य हैं। अभिप्राय यह है कि अयोग्य (अविविक्त=सार्वजनिक) स्थान में तपस्विनियों को अपना पूर्वलिङ्ग अर्थात् एकसाड़ीरूप औत्सर्गिक लिङ्ग ही धारण करना चाहिए। अन्य स्त्रियों (श्राविकाओं) का लिङ्ग पुरुषों (श्रावकों) के समान समझना चाहिए। तात्पर्य यह कि तपस्विनी मृत्यु के समय योग्य (विविक्त=एकान्त) स्थान में वस्त्र का भी परित्याग कर देती है। किन्तु श्राविका, यदि योग्य स्थान मिलता है, तो वस्त्र त्यागती है। यदि वह अतिवैभवशालिनी है या लज्जालु है अथवा उसके स्वजन प्रचुरमिथ्यादृष्टि हैं, तो वह इसी श्रेणी के श्रावकों के समान वस्त्रत्याग नहीं करती, अपने पूर्व (बहुपरिग्रहात्मक) लिङ्ग से ही मरण करती है। ऐसी कहा भी गया है—

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"स्त्री के लिए आगम में जो औत्सर्गिक या आपवादिक लिङ्ग कहा गया है, वह मृत्युकाल में परिग्रह अल्प करनेवाली स्त्री के विषय में पुरुष के समान समझना चाहिए।"

इस व्याख्या में पण्डित जी ने भक्तप्रत्याख्यान के समय आर्यिका और श्राविका के लिए एकान्तस्थान में मुनिवत् नाग्न्यलिङ्ग धारण करने का विधान बतलाया है, किन्तु यह भगवती-आराधना की उक्त गाथा एवं उसकी **विजयोदयाटीका** में प्रतिपादित अर्थ के सर्वथा विरुद्ध है। इसके निम्नलिखित प्रमाण हैं—

### १. आगमोक्त दीक्षालिङ्ग ही भक्तप्रत्याख्यानलिङ्ग

उक्त गाथा और उसकी विजयोदयाटीका में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि स्त्रियों के लिए जो औत्सर्गिक एवं आपवादिक लिङ्ग आगम में कहे गये हैं, वे ही उनके भक्तप्रत्याख्यानकाल में भी होते हैं। उपर्युक्त दोनों लिङ्ग दीक्षालिङ्ग हैं। स्त्री के लिए कहा गया औत्सर्गिक लिङ्ग आर्यिका का दीक्षालिङ्ग है और अपवादलिङ्ग श्राविका का। ये दोनों क्रमशः उपचारमहाव्रतों और अणुव्रतों की दीक्षा ग्रहण करते समय ही धारण कर लिये जाते हैं। शिवार्य ने स्त्रियों के लिए भक्तप्रत्याख्यानकाल में इन्हीं दीक्षालिङ्गों को ग्राह्य बतलाया है। और यह आगमप्रसिद्ध है कि आर्यिका का दीक्षालिङ्ग एक साड़ीपरिधान-रूप होता है तथा श्राविका का एकाधिक-वस्त्रपरिधान-रूप। अतः यह स्वतः सिद्ध है कि शिवार्य ने इन्हीं सवस्त्रलिङ्गों को आर्यिका और श्राविका के लिए भक्तप्रत्याख्यानकाल में ग्राह्य बतलाया है।

आगम में मुनिवत् नग्नरूप को न तो आर्यिका का दीक्षा लिङ्ग कहा गया है, न श्राविका का। अतः यह कल्पना भी नहीं की जा सकती कि भगवती-आराधना में आर्यिका और श्राविका के लिए भक्तप्रत्याख्यान के समय एकान्त स्थान में मुनिवत् नग्न रूप धारण करने का विधान किया गया है। उक्त गाथा से तो उनके नग्न रूप धारण करने का निषेध होता है।

### २. तदेव लिङ्ग

विजयोदयाटीका (भ.आ./गा.८०) के पूर्वोद्धृत **'तदेव भक्तप्रत्याख्याने भवति'** (वही लिङ्ग भक्तप्रत्याख्यान में होता है), इस वाक्य में प्रयुक्त 'एव' शब्द अवधारणात्मक (सीमाबंधन करनेवाला) है। अर्थात् वह स्त्रियों के लिए भक्तप्रत्याख्यान में आगमोक्त दीक्षालिङ्ग के अतिरिक्त अन्य लिङ्ग की ग्राह्यता का निषेध करता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि भगवती-आराधना में आर्यिका और श्राविका के लिए भक्तप्रत्याख्यान के समय मुनिवत् नाग्न्यलिङ्ग का सर्वथा (एकांत एवं सार्वजनिक, सभी स्थानों में) निषेध किया गया है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

### ३. प्राक्तन लिङ्ग

इस प्रकार विजयोदयाटीका के '**लिङ्गं तपस्विनीनां प्राक्तनम्**' (गा.८०/पृ.११५) वाक्य में प्रयुक्त **प्राक्तनम्** (पूर्वगृहीत) शब्द स्पष्ट करता है कि आर्यिकाएँ जो लिङ्ग भक्तप्रत्याख्यान के पूर्व धारण करती हैं, वही उन्हें भक्तप्रत्याख्यानकाल में भी धारण करना चाहिए। आर्यिकाएँ भक्तप्रत्याख्यान के पूर्व एकसाड़ीरूप औत्सर्गिक दीक्षालिङ्ग ही धारण करती हैं, मुनिवत् नाग्न्यलिङ्ग नहीं। अतः 'प्राक्तन' शब्द भी उनके लिए मुनिवत् नाग्न्यलिङ्ग के ग्राह्य होने का निषेध करता है।

### ४. आर्यिका के प्रसंग में विविक्त-अविविक्त स्थान का उल्लेख नहीं

विजयोदयाटीका में जैसे भक्तप्रत्याख्यानाभिलाषिणी श्राविकाओं के लिए विविक्त और अविविक्त स्थानों का भेद करके अविविक्त स्थान में प्राक्तन लिङ्ग (पूर्वगृहीत अनेकवस्त्रात्मक अपवादरूप दीक्षालिङ्ग) का तथा विविक्त (एकांत) स्थान में आर्यिकावत् एकसाड़ीरूप अल्प-परिग्रहात्मक औत्सर्गिक-लिङ्ग का विधान किया गया है, वैसे विविक्त और अविविक्त स्थान का भेद आर्यिकाओं के प्रसंग में नहीं किया गया है। अत एव उनके लिए प्राक्तन औत्सर्गिक लिङ्ग के अतिरिक्त अन्य किसी भी लिङ्ग का विकल्प भगवती-आराधना में निर्दिष्ट नहीं है। इससे उनके लिए मुनिवत् नाग्न्यलिङ्ग का विकल्प स्वतः निरस्त हो जाता है।

किन्तु पं० आशाधर जी ने विजयोदयाटीका के '**लिङ्गं तपस्विनीनां प्राक्तनम्**' इस वाक्य में अपनी तरफ से '**लिङ्गं तपस्विनीनामयोग्यस्थाने प्राक्तनम्**' इस प्रकार **अयोग्यस्थाने** पद जोड़कर यह अर्थ उद्भावित किया है कि भक्तप्रत्याख्यान के समय आर्यिकाओं को अयोग्य (अविविक्त=सार्वजनिक) स्थान में तो अपना प्राक्तन (एकसाड़ी-परिधानरूप औत्सर्गिक) लिङ्ग ही धारण करना चाहिये, किन्तु योग्य (विविक्त=एकान्त) स्थान में मुनिवत् नग्नरूप धारण कर लेना चाहिए। इस प्रकार पं० आशाधर जी ने स्व-कल्पित, असंगत, आगम-प्रतिकूल व्याख्या से इस भ्रान्त धारणा को जन्म दिया है कि भगवती-आराधना में भक्तप्रत्याख्यान के समय आर्यिकाओं और श्राविकाओं के लिए मुनिवत् नाग्न्यलिङ्ग का विधान किया गया है।

पं० आशाधर जी ने अपने मत के समर्थन में "**यदौत्सर्गिकमन्यद्वा लिङ्गं दृष्टं स्त्रियाःश्रुते**" इत्यादि श्लोक उद्धृत किया है, पर उससे उनके मत का समर्थन नहीं होता, क्योंकि वह भगवती-आराधना की "**इत्थीविय जं लिंगं दिट्ठं उस्सग्गियं व इदरं वा**" गाथा का आचार्य अमितगति-कृत संस्कृत पद्यानुवाद है। उसमें भी '**यद् दृष्टं श्रुते**' शब्दों से यह कहा गया है कि स्त्रियों के लिए जो औत्सर्गिक और आपवादिक दीक्षालिङ्ग आगम में निर्धारित किए गए हैं, वे ही उनके लिए मृत्युकाल में भी ग्राह्य होते हैं, और यतः

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

आगम में उनके लिए सवस्त्र दीक्षालिङ्ग ही निर्धारित किए गए हैं, अतः उक्त श्लोक में भी उनके लिए भक्तप्रत्याख्यानकाल में सवस्त्रलिङ्ग ही ग्राह्य बतलाया गया है, मुनिवत् नाग्न्यलिङ्ग नहीं।

### ५. आर्यिका का अल्पपरिग्रहात्मक लिङ्ग ही उपचार से सकलपरिग्रहत्यागरूप उत्सर्गलिङ्ग

विजयोदयाटीका में कहा गया है कि श्राविका को भक्तप्रत्याख्यान के समय एकांतस्थान में सकलपरिग्रहत्याग-रूप उत्सर्गलिङ्ग ग्रहण करना चाहिए। संभवतः यहाँ उत्सर्गलिङ्ग के साथ 'सकलपरिग्रह-त्यागरूप' विशेषण देखकर पं० आशाधर जी को यह भ्रम हो गया कि भगवती-आराधना में स्त्रियों के लिए एकांतस्थान में मुनिवत् नग्नता-रूप उत्सर्गलिङ्ग ग्रहण करने के लिए कहा गया है। अपराजित सूरि को इस बात का अंदेशा था कि पाठकों को ऐसा भ्रम हो सकता है, अतः उन्होंने उक्त कथन के बाद स्वयं शंका उठाकर यह स्पष्ट कर दिया है कि यहाँ एकसाड़ीमात्र अल्पपरिग्रह को उपचार से सकल परिग्रहत्यागरूप उत्सर्गलिङ्ग कहा गया है। यथा—

"**विविक्ते त्वावसथे उत्सर्गलिङ्गं वा सकलपरिग्रहत्यागरूपम्। उत्सर्गलिङ्गं कथं निरूप्यते स्त्रीणामित्यत आह—तदुत्सर्गलिङ्गं स्त्रीणां भवति अल्पं परिग्रहं कुर्वत्याः।**" (वि. टी./भ.आ./गा.८०)।

अपराजित सूरि के कथन का अभिप्राय यह है कि यद्यपि निश्चयनय से तो वस्त्र का भी त्याग कर देनेवाले मुनि का लिङ्ग उत्सर्गलिङ्ग होता है, तथापि स्त्री के प्रसंग में एकसाड़ी-मात्र रखकर शेष परिग्रह त्याग देनेवाली आर्यिका और श्राविका के अल्पपरिग्रहात्मक लिङ्ग को भी उपचार से उत्सर्गलिङ्ग नाम दिया गया है। उपचार-महाव्रत-धारिणी, उपचारतपस्विनी, उपचारसंयती और उपचारश्रमणी के समान उपचार-उत्सर्गलिङ्ग नाम का व्यवहार युक्तिसंगत भी है। पं० आशाधर जी ने भी यह बात अपनी पूर्वोद्धृत टीका में निम्नलिखित शब्दों में स्वीकार की है—"**औत्सर्गिकं तपस्विनीनां साटकमात्रपरिग्रहेऽपि तत्र ममत्वपरित्यागादुपचारतो नैर्ग्रन्थ्यव्यवहरणानुसरणात्।**" (मूलाराधनादर्पण / भ. आ. / गा.८०)। फिर भी (अपराजित सूरि के स्पष्टीकरण एवं आत्म-स्वीकृति के बाद भी) पण्डित जी ने आर्यिका और श्राविका के लिए भक्तप्रत्याख्यानकाल में स्त्रियों के लिए निर्धारित उपचार-उत्सर्गलिङ्ग के स्थान में पुरुषों के लिए निर्धारित निश्चय-उत्सर्गलिङ्ग ग्राह्य बतलाया है, यह आश्चर्य की बात है। यह तो स्पष्टतः भगवती-आराधना की उक्त गाथा में प्रतिपादित अर्थ के प्रतिकूल है।

### ६. आर्यिकाओं के प्रसंग में 'पुंसामिव योज्यम्' निर्देश भी नहीं

विजयोदयाटीका में जैसे '**इतरासां पुंसामिव योज्यम्**' (भ.आ./गा.८०) इस वाक्य के द्वारा भक्तप्रत्याख्यान-काल में श्राविकाओं की लिङ्गव्यवस्था को पुरुषों की

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

लिङ्गव्यवस्था के समान समझ लेने का निर्देश किया गया है, वैसे आर्यिकाओं की लिङ्गव्यवस्था को पुरुषों की लिङ्गव्यवस्था के समान समझ लेने का निर्देश नहीं किया गया है। अतः उनके लिए भक्तप्रत्याख्यान के समय एकान्तस्थान में मुनिवत् नाग्न्यलिङ्ग ग्राह्य बतलाना अप्रामाणिक प्ररूपण है।

### ७. 'पुंसामिव योज्यम्' का अभिप्राय

भगवती-आराधना की '**उस्सग्गियलिंगकदस्स**' (गा. ७६), तथा '**आवसधे वा अप्पाउग्गे**' (गा.७८) इन गाथाओं में कहा गया है कि यदि श्रावक महर्द्धिक (अतिवैभव-सम्पन्न) है, लज्जालु है अथवा उसके परिवारजन मिथ्यादृष्टि (विधर्मी) हैं, तो उसे भक्तप्रत्याख्यान के समय अविविक्त (सार्वनिक) स्थान में पूर्वगृहीत सवस्त्र अपवाद-लिङ्ग दिया जाना चाहिए तथा विविक्त (एकान्त) स्थान में मुनिवत् नग्नतारूप उत्सर्गलिङ्ग दिया जा सकता है।

अपराजितसूरि ने इन गाथाओं को दृष्टि में रखते हुए "**इत्थीवि य जं लिंगं दिट्ठं**" इस पूर्वोद्धृत ८०वीं गाथा की विजयोदया टीका में '**इतरासां पुंसामिव योज्यम्**' यह उपर्युक्त वाक्य लिखा है अर्थात् श्राविकाओं की भक्तप्रत्याख्यानकालिक लिङ्गव्यवस्था पुरुषों (श्रावकों) के लिए उक्त गाथाओं में निर्धारित व्यवस्था के समान समझनी चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि यदि कोई श्राविका भी महर्द्धिक या लज्जालु है अथवा उसके स्वजन मिथ्यादृष्टि हैं, तो उसे भक्तप्रत्याख्यान के समय सार्वजनिक स्थान में पूर्वगृहीत बहुवस्त्र-परिधानरूप अपवादलिङ्ग ग्राह्य है, किन्तु एकान्तस्थान में वह आर्यिकावत् एकसाड़ीमात्र-परिधानरूप अल्पपरिग्रहात्मक उत्सर्गलिङ्ग ग्रहण कर सकती है। यह अर्थ अपराजित सूरि ने '**इतरासां पुंसामिव योज्यम्**' इस वाक्य के अनन्तर निम्न शब्दों में स्पष्ट कर दिया है—"**यदि महर्द्धिका लज्जावती मिथ्यादृष्टि-स्वजनाश्च तस्याः प्राक्तनं लिङ्गम्। विविक्ते त्वावसथे उत्सर्गलिङ्गं वा सकलपरिग्रहत्यागरूपम्। उत्सर्गलिङ्गं कथं निरूप्यते स्त्रीणामित्यत आह—तदुत्सर्गलिङ्गं स्त्रीणां भवति अल्पं परिग्रहं कुर्वत्याः।**" (वि. टी. / भ. आ. / गा. ८०)। इन वाक्यों में अपराजित सूरि ने स्पष्ट कर दिया है कि श्राविका को एकान्त स्थान में स्त्रियों के लिए निर्धारित अल्पपरिग्रहात्मक (एकसाड़ी-मात्रपरिधानरूप) उत्सर्गलिङ्ग ग्राह्य है।

किन्तु पं० आशाधर जी ने '**इतरासां पुंसामिव योज्यम्**' का अर्थ यह लगा लिया कि भक्तप्रत्याख्यानाभिलाषिणी महर्द्धिक, लज्जालु या मिथ्यादृष्टि स्वजनवाली श्राविका एकान्त स्थान में इन्हीं गुणोंवाले श्रावक के समान वस्त्र भी त्याग देती है। (देखिए, उनकी पूर्वोद्धृत टीका) यह अर्थ भगवती-आराधना की उक्त गाथा और उसकी अपराजित-सूरिकृत उपर्युक्त टीका के एकदम विपरीत है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

### ८. अमहर्द्धिकादि श्राविकाओं के लिए सर्वत्र उत्सर्गलिङ्ग

अपराजितसूरि ने कहा है कि जो श्राविका महर्द्धिक, लज्जालु या मिथ्यादृष्टि परिवार की है, उसे सार्वजनिक स्थान में पूर्वगृहीत अपवादलिङ्ग ग्रहण करने की अनुमति है, किन्तु एकान्त स्थान में उसे उत्सर्गलिङ्ग ग्रहण करना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि जो श्राविका महर्द्धिक या मिथ्यादृष्टि-परिवार की नहीं है, उसकेलिए सार्वजनिक स्थान में भी उत्सर्ग-लिङ्ग ग्रहण करने का आदेश है। अब यदि इस उत्सर्गलिङ्ग को मुनिवत् नाग्न्यरूप-उत्सर्गलिङ्ग माना जाए, तो स्त्री के सार्वजनिक स्थान में नग्न होने का प्रसंग आयेगा, जो स्त्री के शीलरक्षणार्थ आवश्यक लज्जारूप धर्म के और लोकमर्यादा के विरुद्ध है, जिनके पालन की आज्ञा आगम में दी गई है—"**गयरोसवेरमायासलज्जमज्जादकिरियाओ।**" (मूलाचार/गा.१८८)।

आगम में स्त्री को सार्वजनिक स्थान में अपने अंगों को सदा आवृत रखने का आदेश है। आचार्य कुन्दकुन्द और आचार्य अमितगति ने कहा है कि स्त्री का गात्र स्वयं संवृत (ढँका हुआ) नहीं होता, इसलिए उसे वस्त्र से आवृत करने की आज्ञा दी गई है—

"**ण हि संउडं च गत्तं तम्हा तासिं च संवरणं॥**"
(प्रवचनसार/तात्पर्यवृत्तिगत गाथा/३/२४/१० पृ.२७६)।

"**न ---गात्रं च संवृतं तासां संवृतिर्विहिता ततः॥**"
(योगसारप्राभृत ८/४७)।

तात्पर्य यह है कि शीलरक्षणार्थ स्त्रीशरीर के कुछ अंग पुरुषों को दृष्टिगोचर नहीं होने चाहिए, किन्तु वे यथाजात अवस्था में दृष्टिगोचर होते हैं, अतः उन्हें वस्त्र से आच्छादित कर अदृष्टिगोचर बनाना आवश्यक है। श्राविका के सार्वजनिक स्थान में नग्न हो जाने पर इस आगमवचन का पालन नहीं हो सकता, अतः अमहर्द्धिक, अलज्जालु (जिसे केवल एकसाड़ी धारण करने में लज्जा का अनुभव नहीं होता) अथवा सम्यग्दृष्टि-परिवार की श्राविका को सार्वजनिक स्थान में जिस उत्सर्गलिङ्ग के ग्रहण का उपदेश है, वह मुनिवत् नग्नतारूप उत्सर्गलिङ्ग नहीं हो सकता, आर्यिकावत् एकवस्त्ररूप उत्सर्गलिङ्ग ही हो सकता है। इससे सिद्ध है कि अपराजित सूरि ने श्राविकाओं के लिए एकांत स्थान में भी आर्यिकावत् एकवस्त्ररूप उत्सर्गलिङ्ग ही ग्राह्य बतलाया है। इस तथ्य से भी सिद्ध है कि पं० आशाधर जी की व्याख्या भगवती-आराधना की उक्त गाथा के अभिप्राय के विरुद्ध है।

### ९. युक्तितः भी आगमविरुद्ध

उपर्युक्त शब्दप्रमाणों से सिद्ध है कि भगवती-आराधना में भक्तप्रत्याख्यान के समय स्त्रियों के लिए एकांत या सार्वजनिक, किसी भी स्थान में मुनिवत् नाग्न्यलिङ्ग ग्रहण करने

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

का उल्लेख नहीं है। उक्त शब्दप्रमाणों से वह आगमविरुद्ध सिद्ध होता है। युक्तिः भी वह आगम विरुद्ध ठहरता है, क्योंकि भक्तप्रत्याख्यान के समय आर्यिका या श्राविका के वस्त्रत्याग से किसी प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती। उससे न तो उनके गुणस्थान की वृद्धि होती है, न संवरनिर्जरा की। वह स्त्रियों को मोक्षमार्ग में किसी भी तरह आगे नहीं बढ़ाता। स्त्रीपर्याय में जीव का उत्थान पाँचवें गुणस्थान तक ही हो सकता है और वह साड़ीमात्र-परिग्रहरूप उत्सर्गलिङ्ग से ही संभव है, उसके अभाव में नहीं। इसके अतिरिक्त संस्तारारूढ़ स्त्री की नग्न अवस्था में मृत्यु होने पर यदि उसके शव को उसी अवस्था में दाहसंस्कार के लिए ले जाया जाता है, तो इससे लज्जास्पद और बीभत्स दृश्य उपस्थित होगा और यदि साड़ी में लपेटकर ले जाया जाता है, तो यह सिद्ध होगा कि वस्त्रत्याग निरर्थक है।

## १०. पं० सदासुख जी को अस्वीकार्य

पं० सदासुख जी ने भी उक्त गाथा की स्वरचित टीका में आर्यिकाओं और श्राविकाओं के लिए भक्तप्रत्याख्यानकाल में मुनिवत् नाग्न्यलिङ्ग के विधान का उल्लेख नहीं किया। वे लिखते हैं—"बहुरि अल्पपरिग्रहकू धारती जे स्त्री तिनकै हू औत्सर्गिक लिंग व अपवादलिंग दोऊ प्रकार होय है। तहाँ जो सोलह हस्तप्रमाण एक सुफेद वस्त्र अल्पमोल का तातै पग की एडीसूं मस्तकपर्यन्त सर्व अंगकूं आच्छादन करि अर मयूरपिच्छिका धारण करती स्त्री --- ताकै --- आर्यिका का व्रतरूप औत्सर्गिक लिङ्ग कहिए। --- बहुरि गृह में वासकरि, अणुव्रत धारण करि शील, संयम, संतोष, क्षमादिरूप रहना, यह स्त्रीनि के अपवादलिंग है। सो संस्तर में दोऊ ही होय हैं। (भगवती-आराधना / गाथा 'इत्थीवि य जं लिंगं' ८३ / प्रकाशक-विशम्बरदास महावीरप्रसाद जैन दिल्ली)।

इस वक्तव्य में पं० सदासुख जी ने भगवती-आराधना के अनुसार भक्तप्रत्याख्यान-काल में स्त्रियों के लिए उपर्युक्त दो ही लिंग बतलाए हैं, मुनिवत् नाग्न्यलिंग नहीं बतलाया। पंडित जी की यह व्याख्या मूल गाथा के अनुरूप है। मूल गाथा में भक्तप्रत्याख्यान के समय एकांत और सार्वजनिक स्थान का भेद किए बिना सभी आर्यिकाओं के लिए उत्सर्गलिङ्ग और सभी श्राविकाओं के लिए अपवादलिङ्ग ग्राह्य बतलाया गया है। उसमें महर्द्धिका आदि श्राविकाओं के लिए एकांतस्थान में उत्सर्गलिङ्ग ग्रहण करने का कथन नहीं है। इसका कथन महर्द्धिक आदि श्रावकों के लिए बतलाई गई विशेष लिंगव्यवस्था का अनुकरण कर टीकाकार अपराजितसूरि ने किया है।

यह अनुसंधान दर्शाता है कि भगवती-आराधना में आर्यिकाओं और श्राविकाओं के लिए भक्तप्रत्याख्यान के समय एकान्त स्थान में मुनिवत् नाग्न्यलिङ्ग का विधान होने की भ्रान्त धारणा पं० आशाधर जी की भ्रान्तिजनित व्याख्या से जनमी है और इसका प्रायः

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

सभी उत्तरवर्ती व्याख्याकारों ने अनुसरण किया है। उदाहरणार्थ सन् १९३५ ई० में स्वामी देवेन्द्रकीर्ति दिगम्बर जैन ग्रंथमाला शोलापुर द्वारा प्रकाशित भगवती-आराधना के हिन्दी अर्थकर्त्ता पं० जिनदास पार्श्वनाथ शास्त्री फड़कुले ने तथा सन् १९७८ में जैन संस्कृति संरक्षक संघ शोलापुर एवं सन् १९९० में हीरालाल खुशालचन्द दोशी फलटण द्वारा प्रकाशित भगवती-आराधना के अनुवादक सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचंद्र जी शास्त्री ने पं० आशाधर जी का अनुसरण करते हुए '**इत्थीवि य जं लिंगं दिट्ठं**' गाथा के अर्थ में लिखा है कि भक्तप्रत्याख्यान करनेवाली आर्यिका एवं श्राविका को एकान्त स्थान में मुनिवत् नग्नरूप धारण करना चाहिए। क्षुल्लक जिनेन्द्रवर्णी ने भी जैनेन्द्र सिद्धान्तकोश (भाग ३/ पृ.४१७) में ऐसा ही उल्लेख किया है।

उपर्युक्त दस प्रमाणों से सिद्ध है कि इन सभी टीकाओं या अनुवादों में प्ररूपित उक्त धारणा भ्रान्तिपूर्ण है। भगवती-आराधना में वर्णित उक्त गाथा की समीचीन व्याख्या श्री अपराजितसूरि ने विजयोदयाटीका में की है। उसमें उन्होंने गाथा का यह अर्थ बतलाया है कि भक्तप्रत्याख्यानकाल में आर्यिका को एकान्त और सार्वजनिक, दोनों स्थानों में वही साड़ीमात्र-परिग्रहरूप उत्सर्गलिङ्ग धारण करना चाहिए, जो वे भक्तप्रत्याख्यान के पूर्व धारण करती हैं तथा जो श्राविकाएँ अतिवैभवसम्पन्न, लज्जालु अथवा मिथ्यादृष्टि परिवार की हैं, वे सार्वजनिक स्थान में तो अपना पूर्वगृहीत अनेकवस्त्रात्मक अपवादलिंग ही ग्रहण करें, किन्तु एकान्तस्थान उपलब्ध हो, तो आर्यिकावत् एकवस्त्ररूप उत्सर्गलिङ्ग धारण करें। अन्य श्राविकाओं को दोनों स्थानों में आर्यिकावत् उत्सर्गलिंग ही ग्रहण करना चाहिए।

---

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

# चतुर्दश अध्याय

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

चतुर्दश अध्याय

# अपराजितसूरि : दिगम्बर आचार्य

## प्रथम प्रकरण

## अपराजितसूरि के दिगम्बर होने के प्रमाण

पं० नाथूराम जी प्रेमी ने भगवती-आराधना के टीकाकार अपराजितसूरि को भी यापनीयसंघी माना है। श्रीमती डॉ० कुसुम पटोरिया ने उनका अनुसरण किया है, साथ ही अपराजितसूरि को यापनीय-आचार्य सिद्ध करने के लिए कुछ नये हेतु भी जोड़े हैं। डॉ० सागरमल जी ने इन दोनों के पदचिह्नों पर चलते हुए हेतुओं में कुछ और वृद्धि की है। उन सब का संग्रह उन्होंने अपने ग्रंथ 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' में किया है। उनमें प्रमुख हेतु यह है कि अपराजितसूरि ने श्वेताम्बर-आगमों से उद्धरण देकर मुनि के लिए विशेष परिस्थितियों में अपवादरूप से सचेललिंग का समर्थन किया है, अतः वे यापनीय-परम्परा के हैं। किन्तु इनमें से अनेक हेतु तो असत्य हैं और अनेक हेत्वाभास हैं, अत एव अपराजितसूरि को यापनीय सिद्ध करनेवाला कोई भी हेतु उपलब्ध नहीं हैं। प्रस्तुत किये गये हेतुओं की असत्यता और हेत्वाभासता का प्रदर्शन आगे किया जायेगा। सर्वप्रथम भगवती-आराधना की विजयोदयाटीका में अपराजितसूरि द्वारा प्रतिपादित उन यापनीयमत-विरुद्ध सिद्धान्तों का वर्णन किया जा रहा है, जिनसे सिद्ध होता है कि टीकाकार यापनीय-परम्परा के नहीं, अपितु दिगम्बर-परम्परा के हैं।

### विजयोदया टीका में यापनीयमत-विरुद्ध सिद्धान्त

१

### सवस्त्रमुक्ति का निषेध

### तीर्थंकरों का अचेललिंग ही मोक्ष का एकमात्र उपाय

अपराजितसूरि के निम्नलिखित वचनों से सवस्त्रमुक्ति का निषेध होता है—

१. "**जिनानां प्रतिबिम्बं चेदमचेललिङ्गम्। ते हि मुमुक्षवो मुक्त्युपायज्ञा यद् गृहीतवन्तो लिङ्गं तदेव तदर्थिनां योग्यमित्यभिप्रायः। यो हि यदर्थी विवेकवान् नासौ**

**तदनुपायमादत्ते, यथा घटार्थी तुरिवेमादीन्। मुक्त्यर्थी च यतिर्न चेलं गृह्णाति मुक्तेरनुपायत्वात्। यच्चात्मनोऽभिप्रेतस्योपायस्तन्नियोगत उपादत्ते यथा चक्रादिकं, तथा यतिरपि अचेलताम्। तदुपायता च अचेलताया जिनाचरणादेव ज्ञानदर्शनयोरिव।**" (वि.टी./गा. 'जिणपडिरूवं' ८४/ पृ.१२०)।

**अनुवाद**—"अचेललिंग जिनदेवों का प्रतिबिम्ब है। जिनेन्द्रदेव मोक्ष के अभिलाषी थे और मोक्ष के उपाय को जानते थे। अतः उन्होंने जिस लिंग को धारण किया था, वही सभी मोक्षार्थियों के योग्य है। क्योंकि जो विवेकवान् होता है, वह जिस चीज को चाहता है, उसे प्राप्त न करानेवाले उपाय को नहीं अपनाता। जैसे घट चाहनेवाला मनुष्य तुरी, वेमा आदि को ग्रहण नहीं करता, क्योंकि वे घटनिर्माण के साधन नहीं हैं (अपितु पटनिर्माण के साधन हैं), वैसे ही मुक्ति चाहनेवाला मुनि वस्त्र ग्रहण नहीं करता, क्योंकि वह मुक्ति का उपाय नहीं है। किन्तु जो स्वाभिलषित वस्तु का उपाय होता है, उसे विवेकवान् मनुष्य नियम से ग्रहण करता है, जैसे घट चाहनेवाला चक्र, दण्ड आदि को। वैसे ही मोक्षार्थी मुनि भी अचेलता को नियम से अपनाता है। और अचेलता सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान के समान मुक्ति का उपाय है, यह जिनेन्द्रदेव के ही आचरण से सिद्ध है।"

**इस कथन में अपराजितसूरि ने 'वस्त्र मोक्ष का उपाय नहीं है, अपितु निर्वस्त्रता मोक्ष का उपाय है' इस तथ्य को जिनेन्द्रदेव के आचरण से प्रमाणित किया है।** दूसरे शब्दों में, जिनेन्द्रदेव के आचरण से यह प्रमाणित किया है कि सचेल अपवादलिंग मोक्ष का उपाय नहीं है, क्योंकि मोक्षार्थी जिनेन्द्रों ने सचेललिंग ग्रहण नहीं किया। यदि वह मोक्ष का उपाय होता, तो वे उसे अवश्य ग्रहण करते, क्योंकि विवेकवान् पुरुष उसी उपाय को ग्रहण करता है, जिससे उसके अभिलषित कार्य की सिद्धि होती है। इस तरह अपराजित सूरि ने मुनि के लिए सचेल अपवादलिंग का निषेध किया है।

उपर्युक्त युक्ति से **अपराजितसूरि ने इस श्वेताम्बर-मान्यता का निरसन किया है कि "तीर्थंकरों द्वारा धारण किया गया अचेललिंग साधारण पुरुषों के द्वारा अनुकरणीय नहीं है। उनके लिए तीर्थंकरों ने सचेललिंग का ही उपदेश दिया है।"**[१]

---

१. अरहंता जमचेला तेणाचेलत्तणं जइ मयं ते।
तो तव्वयणाउ च्चिय निरतिसओ होहि माऽचेलो॥ २५८५॥ विशेषावश्यकभाष्य।
"परमगुरूपदेशश्चैवं वर्तते—निरुपमधृतिसंहननाद्यतिशयरहितेनाचेलकेन नैव भवितव्यम्।" हेम. वृत्ति/ विशे.भा. २५८५/ पृ. ५१७। "न रथ्यापुरुष-कल्पानां भवादृशां जिनकल्पस्तीर्थकरैरनुज्ञात इति।" हेम. वृत्ति/विशे. भा./ गा. २५९२/पृ.५१८।

इस मान्यता का खण्डन उन्होंने **'तीर्थकराचरितत्वं च गुणः'** इत्यादि कथन द्वारा **'आचेलक्कुद्देसिय'** (४२३) गाथा की टीका में भी किया है। उनका पूर्ण कथन आगे **'सचेलत्व तीर्थंकर-मार्गानुसरण में बाधक'** (१.१.१६) अनुच्छेद में द्रष्टव्य है।

२. **''सकलपरिग्रहत्यागो मुक्तेर्मार्गो, मया तु पातकेन वस्त्रपात्रादिकः परिग्रहः परीषह-भीरुणा गृहीत इत्यन्तःसन्तापो निन्दा।''** (वि.टी./गा. 'अववादियलिंग' ८६ / पृ.१२२)।

**अनुवाद—**''सकल परिग्रह का त्याग मुक्ति का मार्ग है, किन्तु मुझ पापी ने परीषहों के डर से वस्त्रपात्रादि-परिग्रह ग्रहण किया, ऐसा सोचते हुए मन में सन्ताप करना निन्दा कहलाती है।

यहाँ टीकाकार ने **'सकलपरिग्रह का त्याग मोक्षमार्ग है'** यह कहकर स्पष्ट कर दिया है कि सचेललिंग मोक्ष का मार्ग नहीं है। इससे उन्होंने सचेलमुनियों की अवधारणा को अस्वीकार किया है।

३. **''चेलपरिवेष्टिताङ्गं आत्मानं निर्ग्रन्थं यो वदेत्तस्य किमपरे पाषण्डिनो न निर्ग्रन्थाः?''** (वि.टी./गा.'आचेलक्कु' ४२३/पृ.३२३)।

**अनुवाद—**''जो शरीर को वस्त्र से आच्छादित करके भी अपने को निर्ग्रन्थ कहता है, उसके कथनानुसार क्या अन्यमतावलम्बी साधु निर्ग्रन्थ सिद्ध नहीं होते? अर्थात् उसके कथनानुसार तो सभी सम्प्रदायों के साधु निर्ग्रन्थ कहलाने लगेंगे, क्योंकि उनके सग्रन्थ कहलाने का कोई कारण नहीं रहता।''

इससे स्पष्ट होता है कि **अपराजितसूरि वस्त्रधारी मुनि को निर्ग्रन्थ (साधु) ही नहीं मानते। यह सचेलमुक्ति के निषेध का बहुत बड़ा प्रमाण है।**

४. **''नैव संयतो भवतीति वस्त्रमात्रत्यागेन शेषपरिग्रहसमन्वितः।''** (वि.टी./गा. 'ण य होदि संजदो' १११८/ पृ.५७४)।

**अनुवाद—**''जो वस्त्र का त्याग करता है और शेष परिग्रह रखता है, उसे संयत-गुणस्थान प्राप्त नहीं होता।''

'संयत' शब्द साधु का वाचक है। अतः इस वाक्य में अपराजितसूरि ने वस्त्रादि समस्त परिग्रह के त्यागी को ही साधु कहा है। इससे सिद्ध है कि वे वस्त्रादि-परिग्रहधारी को साधु नहीं मानते।

५. **''न ह्यसंयतसम्यग्दृष्टेः संयतासंयतस्य वा निवृत्तविषयरागता, सकलग्रन्थ-परित्यागो वास्ति।''** (वि.टी./गा.'सिद्धे जयप्प' १)।

**अनुवाद**—"असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा संयतासंयत (श्रावक) के विषयराग की निवृत्ति नहीं होती, न ही समस्त परिग्रह का परित्याग होता है।"

इसका भी तात्पर्य यह है कि जो वस्त्रादि सकल परिग्रह का त्याग नहीं करता, उसे संयतगुणस्थान की प्राप्ति नहीं होती। अर्थात् वह अपराजितसूरि के अनुसार मुनि नहीं कहला सकता।

६. "**एतदुक्तं भवति कर्मनिर्मूलनं कर्त्तुमसमर्थं तपः सम्यग्दृष्टेरप्यसंयतस्य।**" (वि.टी./गा.'सम्मादिट्ठिस्स' ७ पृ.२२)।

**अनुवाद**—"असंयत जीव सम्यग्दृष्टि भी हो, तो भी उसका तप कर्मों का निर्मूलन करने में समर्थ नहीं है।"

इन वचनों से स्पष्ट होता है कि अपराजितसूरि के मत में वस्त्रादिपरिग्रह से युक्त पुरुष संयतगुणस्थान प्राप्त नहीं कर सकता। और संयतगुणस्थान प्राप्त न करनेवाला जीव कर्मों का उन्मूलन करने में समर्थ नहीं होता अर्थात् मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता।

७. "**सकलसङ्गपरिहारो मार्गो मुक्तेः इत्यत्र भव्यानां श्रद्धां जनयति लिङ्गमिति जगत्प्रत्यय इत्यभिहितम्। न चेत्सकलपरिग्रहत्यागो मुक्तिलिङ्गं किमिति नियोगतोऽनुष्ठीयत इति।**" (वि.टी./गा.'जत्तासाधण'८१/पृ.११७)।

**अनुवाद**—"अचेललिंग '**समस्त परिग्रह का त्याग मुक्ति का मार्ग है**' इस जिनवचन में श्रद्धा उत्पन्न करता है। इसलिए उसे ग्रन्थकार ने जगत्प्रत्यय कहा है। यदि सकलपरिग्रहत्याग मुक्ति का लिंग न होता तो उसे नियोगतः (नियम से, अनिवार्यतः) धारण क्यों किया जाता?"

८. "**चेलग्रहणं परिग्रहोपलक्षणं, तेन सकलपरिग्रहत्याग आचेलक्यमित्युच्यते।**" (वि.टी./गा.'आचेलक्कु' ४२३/पृ.३२०)।

**अनुवाद**—"मात्र वस्त्रत्याग को परिग्रह का त्याग नहीं समझ लेना चाहिए। वस्त्रग्रहण तो परिग्रह का उपलक्षण है। अतः वस्त्र के साथ समस्त बाह्य पदार्थों का त्याग परिग्रह का त्याग कहलाता है। उसी को 'आचेलक्य' शब्द से अभिहित किया गया है।"

यहाँ केवल चेल के त्याग को आचेलक्य न कहकर चेलसहित समस्त बाह्य पदार्थों के त्याग को आचेलक्य कहने से स्पष्ट है कि अपराजितसूरि मुनि के **आचेलक्य-स्थितिकल्प-धारी** होने के लिए वस्त्रत्याग को सर्वप्रथम आवश्यक मानते हैं। जो वस्त्रत्यागी नहीं है, वह आचेलक्य-स्थितिकल्प से रहित होने के कारण उनके अनुसार मुनि नहीं है। **अपराजितसूरि के ये अनेकों वचन सवस्त्रमुक्ति का उच्च स्वर में निषेध करते हैं।**

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

### १.१. सचेलत्व की मुक्ति-विरोधिता के अनेक हेतु

अपराजितसूरि ने श्वेताम्बरमत में मान्य सचेल मुनिलिंग को मोक्षविरोधी बतलाया है। उन्होंने अचेलत्व के गुणों का वर्णन करते हुए श्वेताम्बर साधुओं के सचेललिंगगत दोषों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। इस प्रसंग में उन्होंने श्वेताम्बर साधुओं द्वारा गृहीत चौदह प्रकार की उपधि (परिग्रह) का उल्लेख किया है और तन्निमित्तक दोषों पर प्रकाश डाला है। श्वेताम्बर-आगमों के वचन उद्धृत कर उन दोषों की पुष्टि भी की है। अपराजित सूरि ने अचेलता के मोक्षसाधक गुणों और सचेलत्व के मोक्षबाधक दोषों का जितना सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण विस्तार से किया है, उतना किसी भी प्राचीन या अर्वाचीन दिगम्बराचार्य ने नहीं किया। उसका दिग्दर्शन यहाँ कराया जा रहा है।

१.१.१. **दशधर्मपालन में बाधक**—अचेलत्व दशधर्मों की प्रवृत्ति का साधक है और सचेलत्व बाधक, इसका निरूपण करते हुए अपराजितसूरि लिखते हैं—"**चेलग्रहणं परिग्रहोपलक्षणं, तेन सकलपरिग्रहत्याग आचेलक्यमित्युच्यते।** दशविधे धर्मे त्यागो नाम धर्मः। त्यागश्च सर्वसङ्गविरतिरचेलतापि सैव। तेनाचेलो यतिस्त्यागाख्ये धर्मे प्रवृत्तो भवति। अकिञ्चनाख्येऽपि धर्मे समुद्यतो भवति निष्परिग्रहः। परिग्रहार्था ह्यारम्भप्रवृत्तिर्निष्परिग्रहस्या-सत्यारम्भे कुतोऽसंयमः। तथा सत्येऽपि धर्मे समवस्थितो भवति। परं परिग्रहनिमित्तं व्यलीकं वदति। **असति बाह्ये क्षेत्रादिके अभ्यन्तरे च रागादिके परिग्रहे न निमित्तमस्त्यनृताभिधानस्य।** ततो ब्रुवन्नेवमचेलः सत्यमेव ब्रवीति। लाघवं चाचेलस्य भवति। अदत्तविरतिरपि सम्पूर्णा भवति। परिग्रहाभिलाषे सति अदत्तादाने प्रवर्तते नान्यथेति। अपि च रागादिके त्यक्ते भावविशुद्धिमयं ब्रह्मचर्यमपि विशुद्धतमं भवति। सङ्गनिमित्तो हि क्रोधस्तदभावे चोत्तमा क्षमा व्यवतिष्ठते। सुरूपोऽहमाढ्य इत्यादिको दर्पस्त्यक्तो भवति अचेलेनेति मार्दवमपि तत्र सन्निहितम्। अजिह्मभावस्य स्फुटमात्मीयं भावमादर्शयतोऽचेलस्यार्जवता च भवति मायाया **मूलस्य परिग्रहस्य त्यागात्। चेलादिपरिग्रह-परित्यागपरो यस्मात् विरागभावमुपगतः** शब्दादिविषयेष्वसक्तो भवति। ततो विमुक्तेश्च शीतोष्णदंशमशकादिपरिश्रमाणामुरोदानात् निश्चेलता-मभ्युपगच्छता तपोऽपि घोरमनुष्ठितं भवति। एवमचेलत्वोपदेशेन दशविधधर्माख्यानं कृतं भवति संक्षेपेण।" (वि.टी./गा.'आचेलक्कु' ४२३/पृ. ३२०-३२१)।

### अनुवाद

"चेल (वस्त्र) का ग्रहण परिग्रह का उपलक्षण है, इसलिए समस्त परिग्रह के त्याग को आचेलक्य कहते हैं। दस प्रकार के धर्मों में एक त्यागधर्म है। त्याग का अर्थ है समस्त परिग्रह से विरति। अचेलता भी वही है। अतः अचेल यति त्याग-

नामक धर्म में प्रवृत्त होता है। जो निष्परिग्रह है, वह आकिंचन्यधर्म में भी समुद्यत होता है। परिग्रह के लिए ही 'आरंभ' में प्रवृत्ति होती है। परिग्रहहीन व्यक्ति 'आरंभ' नहीं करता, अतः उसके असंयम कैसे हो सकता है? वह सत्यधर्म में भी सम्यग्रूप से अवस्थित होता है, क्योंकि लोग परिग्रह के लिए ही झूठ बोलते हैं। किन्तु जब क्षेत्रादिक बाह्यपरिग्रह और रागादि अभ्यन्तरपरिग्रह नहीं होता, तब झूठ बोलने का कारण ही नहीं रहता। अतः अचेल मुनि जब भी बोलता है, सत्य ही बोलता है। अचेल में लाघव (निराकुलता) भी होता है। अदत्तादान से विरति भी पूर्णतः होती है, क्योंकि परिग्रह की इच्छा होने पर ही अदत्तादान में प्रवृत्ति होती है, अन्यथा नहीं। इसके अतिरिक्त रागादि का त्याग हो जाने पर भावविशुद्धिमय ब्रह्मचर्य विशुद्धतम हो जाता है। क्रोध भी परिग्रह के ही निमित्त से होता है, अतः परिग्रह का अभाव हो जाने से उत्तमक्षमा स्थित हो जाती है। अचेल पुरुष 'मैं सुन्दर हूँ, सम्पन्न हूँ' इस प्रकार का दर्प भी त्याग देता है, अतः उसमें मादर्व भी सन्निहित होता है। परिग्रह माया का मूल है, अतः अचेल व्यक्ति माया (कुटिलता) से मुक्त हो जाने के कारण मन के भाव को यथावत् प्रकट करता है, इसलिए उसमें आर्जव भी होता है। चेलादि-परिग्रह का त्याग कर देनेवाला विरागभाव को प्राप्त हो जाता है, अतः वह विषयों में भी आसक्त नहीं होता। वस्त्रपरिग्रह छूट जाने पर शीतादिपरीषहजय भी संभव होता है, तथा घोर तप का अभ्यास भी होता है। इस प्रकार अचेलत्व के उपदेश से दश धर्मों का उपदेश संक्षेप में दिया गया है।"

इस विवेचना से स्पष्ट किया गया है कि सचेलत्व दश धर्मों के पालन में बाधक है।

१.१.२. **संयमशुद्धि में बाधक**—अचेल मुनि संयम की शुद्धि में समर्थ होता है, सचेल मुनि असमर्थ इसका सयुक्तिक प्रतिपादन अपराजितसूरि ने निम्नलिखित शब्दों में किया है—

"**अथवान्यथा प्रक्रम्यतेऽचेलतागुणप्रशंसा। संयमशुद्धिरेको गुणः। स्वेद-रजो-मलावलिप्ते चेले तद्योनिकास्तदाश्रयाश्च त्रसाः सूक्ष्माः स्थूलाश्च जीवा उत्पद्यन्ते, ते बाध्यन्ते चेलग्राहिणा। संसक्तं वस्त्रं तावत्स्थापयतीति चेत्तर्हि हिंसा स्यात्। विवेचने च ते म्रियन्ते। तत्र संसक्तचेलवतः स्थाने, शयने, निषद्यायां, पाटने, छेदने, बन्धने, वेष्टने, प्रक्षालने, संघट्टने, आतपप्रक्षेपणे च जीवानां बाधेति महानसंयमः। अचेलस्यैवंविधा-संयमाभावात् संयमविशुद्धिः।**" (वि.टी./गा.'आचेलक्कु' ४२३/पृ.३२१)।

**अनुवाद**—"संयम में शुद्धि अचेलता का दूसरा गुण है। पसीने, धूल और मैल से लिप्त वस्त्र में उसी योनिवाले तथा उसके आश्रय से रहनेवाले सूक्ष्म और स्थूल

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं। वस्त्रधारण करने से उनको बाधा होती है और शरीर से वस्त्र को अलग कर देने से वे जीव मर जाते हैं, इसलिए हिंसा होती हैं। जीवसंसक्त वस्त्र को धारण करनेवाला जब उठता है, बैठता है, सोता है, वस्त्र को फाड़ता है, काटता है, बाँधता है, लपेटता है, धोता है, कूटता है और धूप में सुखाता है, तब जीवों को पीड़ा होती है, जिससे महान् असंयम होता है। जो अचेल होता है, वह ऐसे असंयम से बच जाता है, अतः उसके संयम की शुद्धि होती है।''

१.१.३. **इन्द्रियविजय में बाधक**—इन्द्रियविजय में अचेलत्व की साधकता और सचेलत्व की बाधकता के मनोवैज्ञानिक हेतु का उद्घाटन करते हुए सूरि जी कहते हैं—

''**इन्द्रियविजयो द्वितीयः। सर्पाकुले वने विद्यामन्त्रादिरहितो यथा पुमान् दृढप्रयत्नो भवति एवमिन्द्रियनियमने अचेलोऽपि प्रयतते। अन्यथा शरीरविकारो लज्जनीयो भवेदिति।**'' (वि.टी./गा.'आचेलक्कु'४२३/पृ.३२१)।

**अनुवाद**—''अचेलत्व इन्द्रियजय के लिए सचेष्ट करता है। जैसे सर्पों से भरे जंगल में विद्या-मन्त्रादि से रहित पुरुष बड़ी सावधानी से चलता है, वैसे ही अचेल मुनि इन्द्रियों को नियन्त्रित करने का दृढ़ता से प्रयत्न करता है। अन्यथा शरीर में विकार उत्पन्न हो जाने पर लज्जित होने की नौबत आ सकती है।''

अपराजितसूरि ने इस मनोवैज्ञानिक तथ्य पर प्रकाश डाला है कि वस्त्रधारण करने से मुनि को अपने कामविकार को छिपाने का मौका मिल जाता है, इसलिए उसे जीतने के अभ्यास में प्रवृत्त नहीं होता, बल्कि वह शरीर में कामविकार की अभिव्यक्ति से निर्भय हो जाता है और स्वच्छन्दतापूर्वक मानसिक कामभोग करता है, जो द्रव्य-ब्रह्मचर्य के लिये भी घातक बन जाता है। इस तरह सचेलत्व इन्द्रियजय में बाधक है।

१.१.४. **कषायविजय में बाधक**—अचेलता साधु को कषायविजय के योग्य बनाती है, सचेलता अयोग्य इस सत्य का प्रकाशन निम्नलिखित वक्तव्य में किया गया है—

''**कषायाभावश्च गुणोऽचेलतायाः। स्तेनभयाद् गोमयादिरसेन लेपं कुर्वन्निगूहयित्वा कथञ्चिन्मायां करोति। उन्मार्गेण वा स्तेनवञ्चनां कर्त्तुं यायात्। गुल्मवल्ल्याद्यन्तर्हितो वा स्यात्। चेलादिर्ममास्तीति मानं चोद्वहते। बलादपहरणात्तेन सह कलहं कुर्यात्। लाभाद्वा लोभः प्रवर्तत इति चेलग्राहिणाममी दोषाः। अचेलतायां पुनरित्थम्भूतदोषानुत्पत्तिः।**'' (वि.टी./गा. 'आचेलक्कु' ४२३/पृ.३२१)।

**अनुवाद**—"अचेलता कषाय को जीतने में सहायक है। वस्त्रधारी को चोरों से भय रहता है, जिससे वह वस्त्र को गोबर आदि से लिप्त कर छिपाने का मायाचार करता है। अथवा चोरों को धोखा देने के लिये मार्ग बदलकर जाने का प्रयत्न करता है या झाड़ी आदि में छिप जाता है। इस तरह वस्त्र माया कषाय की उत्पत्ति का कारण बनता है। 'मेरे पास वस्त्र है' इस प्रकार का मान भी वस्त्र होने पर उत्पन्न होता है। यदि कोई बलपूर्वक वस्त्र छीनता है, तो उसके साथ कलह करनी पड़ती है। वस्त्र प्राप्त होने पर लोभ होता है। वस्त्रग्रहण में इतने दोष हैं। अचेल रहने पर ये दोष उत्पन्न नहीं होते।"

१.१.५. **ध्यानस्वाध्याय में बाधक**—अधोलिखित वचन ध्यान-स्वाध्याय में अचेलत्व की साधकता और सचेलत्व की बाधकता का निरूपण करते हैं—

"**ध्यानस्वाध्याययोरविघ्नता च। सूचीसूत्रकर्पटादिपरिमार्गणसीवनादिव्याक्षेपेण तयोर्विघ्नो भवति। निःसङ्गस्य तथाभूतव्याक्षेपाभावात्। सूत्रार्थपौरुषीषु निर्विघ्नता, स्वाध्यायस्य ध्यानस्य च भावना।**" (वि.टी./गा.'आचेलक्कु' ४२३/पृ.३२१)।

**अनुवाद**—"अचेल रहने से ध्यान और स्वाध्याय निर्विघ्न सम्पन्न होते हैं। सुई, धागा, वस्त्र आदि को खोजने तथा सीलने आदि के काम में लगने से ध्यान और स्वाध्याय में विघ्न होता है। किन्तु जो अचेल होता है, वह इन चित्तविक्षेपकारी कार्यों से मुक्त रहता है, जिससे सूत्रपौरुषी और अर्थपौरुषी में निर्विघ्नता रहती है तथा स्वाध्याय और ध्यान की भावना होती है।"

१.१.६. **आभ्यन्तरपरिग्रह-त्याग में बाधक**—अचेल मुनि आभ्यन्तर परिग्रह के त्याग में समर्थ होता है, सचेल मुनि असमर्थ, इस तथ्य को प्रकट करते हुए अपराजितसूरि कहते हैं—

"**ग्रन्थत्यागश्च गुणः। बाह्यचेलादिग्रन्थत्यागोऽभ्यन्तरपरिग्रहत्यागमूलः यथा तुषनिराकरणमभ्यन्तरमलनिरासोपायः।**" (वि.टी./गा.'आचेलक्कु' ४२३/पृ.३२१-३२२)।

**अनुवाद**—"आभ्यन्तरपरिग्रह के त्याग का साधन होना भी अचेलता का एक गुण है। जैसे धान के छिलके को दूर करना उसके आभ्यन्तर मैल को दूर करने का उपाय है, वैसे ही वस्त्रादि-बाह्यपरिग्रह का त्याग आभ्यन्तरपरिग्रह के त्याग का मूल है।"

इसका तात्पर्य यह है कि वस्त्रादि-बाह्यपरिग्रह का त्याग न होने पर आभ्यन्तरपरिग्रह का त्याग असंभव है। इस तरह सचेलत्व आभ्यन्तरपरिग्रह के त्याग में बाधक है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१.१.७. **रागद्वेष से मुक्त होने में बाधक**—अचेललिंग से रागद्वेष का परित्याग संभव होता है, सचेललिंग से असंभव, इस सत्य का प्रकाशन इन वचनों में किया गया है—

"**वीतरागद्वेषता च गुणः। सचेलो हि मनोज्ञे वस्त्रे रक्तो भवति, दुष्यत्यमनोज्ञे। बाह्यद्रव्यालम्बनौ हि रागद्वेषौ। तावसति परिग्रहे न भवतः।**"(वि.टी./गा. 'आचेलक्कु' ४२३/पृ.३२२)।

**अनुवाद**—"अचेलता रागद्वेष से मुक्त होने का भी साधन है। वस्त्रधारण करनेवाला मनुष्य सुन्दर वस्त्रों में अनुरक्त हो जाता है और असुन्दर वस्त्रों से द्वेष करता है, क्योंकि रागद्वेष सदा बाह्य द्रव्य के अवलम्बन से होते हैं। परिग्रह न रहने पर रागद्वेष नहीं होते।"

१.१.८. **शरीर के प्रति अनादरभाव में बाधक**—अपराजितसूरि कहते हैं कि अचेलमुनि ही शरीर से विरक्त हो सकता है, सचेल नहीं—

"**किं च शरीरे अनादरो गुणः, शरीरगतादरवशेनैव हि जनोऽसंयमे परिग्रहे च वर्तते। अचेलेन तु तदादरस्त्यक्तः, वातातपादिबाधासहनात्।**" (वि.टी./गा. 'आचेलक्कु' ४२३/पृ.३२२)।

**अनुवाद**—"अचेलता से शरीर में भी अनादर उत्पन्न होता है। शरीर में आदर होने से ही मनुष्य असंयम और परिग्रह में प्रवृत्त होता है। अचेल रहने से हवा, धूप आदि की बाधाओं को सहने का अभ्यास हो जाता है, जिससे शरीर के प्रति आदरभाव छूट जाता है।"

१.१.९. **स्वाधीनता में बाधक**—अचेलता मुनि को स्वाधीन बनाती है और सचेलता पराधीन। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का उद्घाटन अपराजितसूरि ने निम्नलिखित वचनों में किया है—

"**स्ववशता च गुणः देशान्तरगमनादौ सहायाप्रतीक्षणात्। पिच्छमात्रं गृहीत्वा हि त्यक्त-सकलपरिग्रहः पक्षीव यातीति। सचेलस्तु सहायपरवशः चौरभयात् भवति। परवशमानसश्च कथं संयमं पालयेत्?**" (वि.टी./गा.'आचेलक्कु'४२३/पृ.३२२)।

**अनुवाद**—"अचेलता से मनुष्य स्वाधीन हो जाता है, क्योंकि एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने के लिए साथी की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। सकलपरिग्रह का त्यागी मुनि पिच्छीमात्र ग्रहण करके पक्षी के समान निःशंक होकर चला जाता है। सचेल व्यक्ति तो चोरों के भय से साथी के अधीन हो जाता है। जिसका मन दूसरों के अधीन है, वह संयम का पालन कैसे कर सकता है?"

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१.१.१०. **चित्तविशुद्धि के प्रकट होने में बाधक**—सूरि जी का कथन है कि अचेलता से मुनि की निर्विकारता ज्ञापित होती है, सचेलता से उसका ज्ञापन असंभव है—

"**चेतोविशुद्धिप्रकटनं च गुणोऽचेलतायां कौपीनादिना प्रच्छादयतो भावशुद्धिर्न ज्ञायते। निश्चेलस्य तु निर्विकारदेहतया स्फुटा विरागता।**" (वि.टी./गा.'आचेलक्कु' ४२३/पृ.३२२)।

**अनुवाद**—"अचेलता से चित्त की शुद्धता प्रकट होती है। शरीर को लँगोटी आदि से ढँक लेने पर भावशुद्धि का पता नहीं चलता। नग्नपुरुष के देह की निर्विकारता देखकर विरागता का स्पष्टतः बोध होता है।"

तात्पर्य यह कि वस्त्रधारण कामविकार से मुक्त होने में बाधक है, क्योंकि वस्त्रधारी पुरुष मन में उत्पन्न कामविकार की शारीरिक अभिव्यक्ति को वस्त्रों से छिपा सकता है और निर्भय होकर मानसिक कामसेवन का अवसर पा सकता है।

१.१.११. **निर्भयता में बाधक**—अचेलत्व की अभयोत्पादकता और सचेलत्व की भयोत्पादकता को प्रकाशित करते हुए अपराजितसूरि लिखते हैं-

"**निर्भयता च गुणः। ममेदं किमपहरन्ति चौरादयः? किं ताडयन्ति बध्नन्तीति वा? भयमुपैति सचेलो, नाचेलो। भयातुरो वा किं न कुर्यात्?**" (वि.टी./गा.'आचेलक्कु' ४२३/पृ.३२२)।

**अनुवाद**—"अचेलता साधु को निर्भय बना देती है। चोर आदि मेरा क्या हरण कर लेंगे, मुझे किसलिए मारेंगे या बाँधेगे? ऐसा निःशंकभाव उसके मन में आ जाता है। किन्तु सचेल व्यक्ति को भय सताता है और भयातुर क्या नहीं कर सकता?"

१.१.१२. **विश्रब्धता में बाधक**—अचेलता साधु को निःशंक बनाती है और सचेलता सशंक, इस तथ्य की प्रतीति निम्नलिखित शब्दों से करायी गयी है—

"**सर्वत्र विश्रब्धता च गुणः। निष्परिग्रहो न किञ्चनापि शङ्कते। सचेलस्तु प्रतिमार्गयायिनमन्यं वा दृष्ट्वा न तत्र विश्वासं करोति। को वेत्ययं, किं करोति इति।**" (वि.टी./गा. 'आचेलक्कु'४२३/पृ.३२२)।

**अनुवाद**—"अचेलता साधु को सबके प्रति विश्रब्ध बना देती है। किसी के भी प्रति कोई सन्देह नहीं होने देती। किन्तु जो सचेल होता है, वह हर राहगीर को या अन्य किसी भी मनुष्य को शंका की दृष्टि से देखता है। यह कौन है? क्या करता है? ऐसी शंकाएँ उसके मन में उठती हैं।"

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१.१.१३. **अप्रतिलेखना में बाधक**—आगे कहा गया है कि अचेलत्व अप्रतिलेखन का हेतु है और सचेलत्व बहुप्रतिलेखन का—

"**अप्रतिलेखनता च गुणः। चतुर्दशविधमुपधिं गृह्णतां बहुप्रतिलेखनता, न तथाचेलस्य। --- तथा ह्याचारप्रणिधौ भणितं—पडिलेखे पात्रकंबलं तु ध्रुवमिति।**" (वि.टी./गा. 'आचेलक्कु' ४२३/पृ.३२२-३२३)।

**अनुवाद**—"अचेलता प्रतिलेखन (साफ-सफाई या शुद्धीकरण)[२] से मुक्त रहने में भी सहायक है। चौदह प्रकार की उपधि रखनेवालों को बहुत प्रतिलेखना करनी पड़ती है। अचेल को वैसी प्रतिलेखना नहीं करनी पड़ती। **आचारप्रणिधि** में कहा गया है कि पात्र और कम्बल की प्रतिलेखना अवश्य करनी चाहिए।"

यहाँ श्वेताम्बर स्थविरकल्पी साधुओं के द्वारा धारण की जानेवाली चौदह प्रकार की उपधि (परिग्रह) का उल्लेख किया गया है। वह इस प्रकार है—चोलपट्टक, मुखवस्त्रिका, रजोहरण, तीन सूती-ऊनी ओढ़ने के वस्त्र, मात्रक (पात्रविशेष) तथा सात प्रकार का पात्रनिर्योग (भिक्षापात्र तथा उससे सम्बन्धित वस्तुएँ)। (देखिए, अध्याय २/प्रकरण ३/शीर्षक ३.३.१)। 'आचारप्रणिधि' श्वेताम्बरीय दशवैकालिकसूत्र के आठवें अध्ययन का नाम है। (प्रेमी : जै.सा.इ./द्वि.सं./पृ.६१)। सचेललिंगी श्वेताम्बर साधु को इन चौदह उपकरणों की प्रतिलेखना करनी पड़ती है, जिससे अत्यधिक जीवहिंसा होती है। **यहाँ चौदह प्रकार की उपधि रखने से बहुत प्रतिलेखना की आवश्यकता होने के कथन तथा श्वेताम्बर-आगम 'आचारप्रणिधि' के उल्लेख से सिद्ध है कि भगवती-आराधना की 'आचेलक्कुद्देसिय' गाथा (४२३) की टीका में अपराजितसूरि ने श्वेताम्बर साधुओं के सचेललिंगगत दोषों का प्ररूपण किया है।**

१.१.१४. **परिकर्म से मुक्त होने में बाधक**—अचेलत्व साधु को परिकर्म से मुक्त करता है, सचेलत्व उसमें फँसाता है। इस पर प्रकाश डालते हुए टीकाकार कहते हैं—

"**परिकर्मवर्जनं च गुणः। उद्वेष्टनं, मोचनं, सीवनं, बन्धनं, रञ्जनमित्यादिकमनेकं परिकर्म सचेलस्य। स्वस्य वस्त्रप्रावरणादेः स्वयं प्रक्षालनं सीवनं वा कुत्सितं कर्म, विभूषा, मूर्च्छा च।**" (वि.टी./गा.'आचेलक्कु' ४२३/पृ.३२२-३२३)।

**अनुवाद**—"अचेल व्यक्ति परिकर्म से भी मुक्त रहता है। सचेल को बहुत से परिकर्म करने पड़ते हैं, जैसे वस्त्र को लपेटना, छोड़ना, सीना, बाँधना, रँगना आदि।

---

२. प्रतिलेखना =The regular cleaning of all implements or objects for daily use. (Sir M. Monier Williams : Sanskrit-English Dictionary)

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अपने पहनने-ओढ़ने आदि के वस्त्रों को स्वयं धोने, सीने आदि के कुत्सित कर्म तथा शरीर को सजाने आदि के ममत्वपूर्ण परिकर्म में वस्त्रधारी फँसा रहता है।''

यहाँ अपराजितसूरि ने सचेलत्व के वे ही दोष बतलाये हैं, जो श्वेताम्बरीय आचारांग (१/६/३/१८२) में बतलाये गये हैं। (देखिए, अध्याय ३/प्रकरण १/शीर्षक ७)।

१.१.१५. **लाघव में बाधक**—सूरि जी का कथन है कि अचेलत्व साधु को भारमुक्त करता है और सचेलत्व भारग्रस्त—

''**लाघवं च गुणः। अचेलोऽल्पोपधिः स्थानासन-गमनादिकासु क्रियासु वायुवदप्रतिबद्धो लघुर्भवति नेतरः।**'' (वि.टी./गा.'आचेलक्कु'४२३/पृ.३२३)।

**अनुवाद**—''अचेल पुरुष भारमुक्त हो जाता है। उसके पास अल्प उपधि होती है, अतः वह ठहरने, बैठने, चलने आदि की क्रियाओं में वायु के समान उन्मुक्त एवं भारहीन हो जाता है। सचेल पुरुष इस प्रकार उन्मुक्त और भारमुक्त नहीं हो पाता।''

१.१.१६. **सचेलत्व तीर्थंकर-मार्गानुसरण में बाधक**—अचेलत्व से तीर्थंकरमार्गानुसरण संभव होता है, सचेलत्व से असंभव। इस तथ्य को अपराजितसूरि ने निम्नलिखित वक्तव्य में रेखांकित किया है—

''**तीर्थकराचरितत्वं च गुणः। संहननबलसमग्रा मुक्तिमार्गप्रख्यापनपरा जिनाः सर्व एवाचेला भूता भविष्यन्तश्च। यथा मेर्वादिपर्वतगताः प्रतिमास्तीर्थकरमार्गानुयायिनश्च गणधरा इति तेऽप्यचेलास्तच्छिष्याश्च तथैवेति सिद्धमचेलत्वम्। चेलपरिवेष्टिताङ्गो न जिनसदृशः। व्युत्सृष्टप्रलम्बभुजो निश्चेलो जिनप्रतिरूपतां धत्ते।**'' (वि.टी./गा.'आचेलक्कु' ४२३/पृ.३२३)।

**अनुवाद**—''तीर्थंकरों के मार्ग का अनुसरण अचेलता से ही संभव है। संहनन और बल से परिपूर्ण तथा मोक्षमार्ग का उपदेश देने में तत्पर सभी तीर्थंकर अचेल थे तथा भविष्य में भी अचेल ही होंगे। जैसे मेरु आदि पर्वतों पर विराजमान जिनप्रतिमाएँ अचेल हैं और तीर्थंकरों के मार्ग के अनुयायी गणधर अचेल होते हैं, वैसे ही उनके शिष्य भी उन्हीं की तरह अचेल होते हैं। इस प्रकार अचेलता ही मोक्ष का मार्ग सिद्ध होती है। जिसका शरीर वस्त्र से परिवेष्टित है, वह तीर्थंकर सदृश नहीं होता। जो दोनों भुजाओं को लटकाकर खड़ा होता है और निश्चेल होता है वह 'जिन'-सदृश रूप का धारी होता है।''

**यहाँ अपराजितसूरि ने इस श्वेताम्बरीय मान्यता को अस्वीकार किया है कि तीर्थंकर के शिष्य तीर्थंकरगृहीत अचेललिंग के अधिकारी नहीं हैं।**

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१.१.१७. **बलवीर्य के प्रकटन में बाधक**—अपराजितसूरि आगे कहते हैं कि अचेलत्व से बलवीर्य प्रकट होता है, सचेलत्व उसे अवरुद्ध करता है—

"**अनिगूढबीलवीर्यता च गुणः। परीषहसहने शक्तोऽपि सचेलो न परीषहान् सहते इति। एवमेतद्गुणावेक्षणादचेलता जिनोपदिष्टा।**" (वि.टी./गा.'आचेलक्कु'४२३/पृ.३२३)।

**अनुवाद**—"अचेलता बलवीर्य की अभिव्यक्ति में सहायक होती है। जो वस्त्रधारण करता है, वह परीषह सहने में समर्थ होते हुए भी उससे वंचित हो जाता है। इन गुणों को देखकर जिनेन्द्रदेव ने मोक्ष के लिए अचेलता का उपदेश दिया है।"

१.१.१८. **अचेल ही निर्ग्रन्थ है**—अचेलत्व ही निर्ग्रन्थता का लक्षण है, सचेलत्व नहीं, इस सत्य का प्रकाशन सूरि जी ने निम्नलिखित शब्दों में किया है—

"**चेलपरिवेष्टिताङ्गं आत्मानं निर्ग्रन्थं यो वदेत्तस्य किमपरे पाषण्डिनो न निर्ग्रन्थाः? वयमेव, न ते निर्ग्रन्था इति वाङ्मात्रं नाद्रियते मध्यस्थैः।**" (वि.टी./गा.'आचेलक्कु' ४२३/पृ.३२३)।

**अनुवाद**—"जिनेन्द्रदेव द्वारा मोक्ष के लिए अचेलता का उपदेश दिये जाने से सिद्ध है कि जो अचेल होता है, वही निर्ग्रन्थ है। जो पुरुष शरीर को वस्त्र से परिवेष्टित कर अपने को निर्ग्रन्थ कहता है, उसके अनुसार अन्यमतानुयायी साधु निर्ग्रन्थ कैसे नहीं कहलायेंगे? 'हम ही निर्ग्रन्थ हैं, वे निर्ग्रन्थ नहीं हैं', यह तो कथनमात्र है। कोई भी मध्यस्थ पुरुष इस पर विश्वास नहीं करेगा।"

तात्पर्य यह कि यदि कोई जैनधर्मानुयायी साधु सवस्त्र होते हुए भी अपने को निर्ग्रन्थ कहता है, तो अन्य मतानुयायी सवस्त्र साधु भी निर्ग्रन्थ कहलायेंगे। अतः निर्वस्त्र रहना ही निर्ग्रन्थता का लक्षण है। **श्वेताम्बर साधु सचेल होते हुए भी अपने को निर्ग्रन्थ कहते हैं। अपराजितसूरि ने श्वेताम्बरों की इस मान्यता पर प्रहार किया है।**

सचेलता के दोषों का उपसंहार करते हुए अपराजित सूरि कहते हैं—

"**इत्थं चेले दोषा अचेलतायां वा अपरिमिता गुणा इति अचेलता स्थितिकल्पत्वेनोक्ता।**" (वि.टी./गा.'आचेलक्कु' ४२३/पृ. ३२३)।

**अनुवाद**—"इस तरह वस्त्रधारण करने में अनेक दोष हैं और अचेलता में अपरिमित गुण हैं, इसलिए अचेलता को स्थितिकल्प कहा गया है।"

### १.२. किसी भी सचेल का निर्दोष रहना असंभव

अपराजितसूरि ने सचेल मुनिलिंग में इन मोक्षविरोधी अठारह दोषों का निरूपण कर यह स्पष्ट किया है कि किसी भी वस्त्रधारी पुरुष का वस्त्रपरिग्रहजन्य दोषों से

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

का त्यागी होता है, अतः वह मोक्ष का पात्र नहीं है। आगे वे कहते हैं कि गृहस्थ एकदेश-प्रवृत्तिरत होता है, अतः वह पूर्ण संयम का पालक नहीं होता— "**देशप्रवृत्तिर्गृहिणामकृत्स्नात्**" (वि.टी./ गा. 'अणुकंपा' १८२८ / पृ.८१५)। क्षेत्र, वास्तु, सुवर्ण, धान्य, वस्त्र, भाण्ड, द्विपद (दास-दासी), चतुष्पद (हाथी, घोडा आदि), यान तथा शयन-आसन, ये दस बाह्यपरिग्रह हैं। (वि.टी./गा.'बाहिरसंगा'१११३ )। इनका त्याग किये बिना ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व, चारित्र, वीर्य और अव्याबाधत्व नामक आत्मगुणों को आच्छादित करनेवाला कर्ममल दूर नहीं किया जा सकता।[३] जैसे चावल का तुष दूर किये बिना उसके अन्तर्मल का शोधन सम्भव नहीं है, वैसे ही जो बाह्यपरिग्रहरूपी कर्ममल से सम्बद्ध है, उसके आभ्यन्तर कर्ममल का शोधन असंभव है।[४] लोभादिरूप परिणामों के कारण जीव बाह्य द्रव्य को ग्रहण करता है।[५] अतः जो बाह्यपरिग्रह ग्रहण करता है, वह नियम से लोभ आदि रूप अशुभपरिणामवाला होने से कर्मबन्ध करता है। अतः दशविध परिग्रह त्याज्य है।[६] चौदह प्रकार के आभ्यन्तर परिग्रह का त्याग भावनैर्ग्रन्थ्य है, वही मुक्ति का उपाय है। और भावनैर्ग्रन्थ्य का उपाय है दशविध बाह्यग्रन्थ का त्याग।"[७]

सूरि जी ने आगे लिखा है—"वस्त्रधारण करने से गृहस्थ परीषहजय में असमर्थ होता है और परीषहजय के बिना संयम का पालन नहीं होता।"[८]

गृहवास के दोषों पर प्रकाश डालते हुए अपराजितसूरि कहते हैं—"गृहस्थाश्रम 'यह मेरा है' इस भाव का अधिष्ठान है, निरन्तर माया और लोभ को उत्पन्न करने में दक्ष जीवन के उपायों में लगानेवाला है, कषायों की खान है, दूसरों को पीड़ा

---

३. "बाह्यमलमनिराकृत्याभ्यन्तरकर्ममलं ज्ञानदर्शनसम्यक्त्वचारित्रवीर्याव्याबाधत्वानामात्मगुणानां छादने व्यापृतं न निराकर्त्तुं शक्यते।" वि.टी. / पातनिका / गा. 'जह कुंडओ' १११४ ।

४. "तुषसहितस्य तन्दुलस्यान्तर्मलं बाह्ये तुषेऽनपनीते यथा शोधयितुमशक्यं तथा बाह्यपरिग्रहमल-संसक्तस्याभ्यन्तरकर्ममलमशक्यं शोधयितुमिति गाथार्थः।" वि.टी./गा. 'जह कुंडओ' १११४ ।

५. लोभादिपरिणामहेतुकं बाह्यद्रव्यग्रहणम्।" वि.टी. / गा. 'जह कुंडओ' १११४।

६. "एते यदोदिताः परिणामास्तदा ग्रन्थान् बाह्यान् ग्रहीतुं मनः करोति नान्यथा। तस्माद्यो बाह्यं गृह्णाति परिग्रहं स नियोगतो लोभाद्यशुभपरिणामवानेवेति कर्मणां बन्धको भवति। ततस्त्याज्याः परिग्रहाः।" वि.टी. / गा.'रागो लोभो' १११५।

७. "वस्त्रमात्रपरित्यागेनैव निर्ग्रन्थताभिमानोद्वहनमप्यसत्यं, सत्येवं तिर्यञ्चोऽपि निर्ग्रन्थाः स्युः। चतुर्दशप्रकारस्याभ्यन्तरपरिग्रहस्य त्यागाद् भावनैर्ग्रन्थ्यं समवतिष्ठते। तदेव हि मुक्तेरुपायः। भावनैर्ग्रन्थ्यस्य उपाय इति दशविधबाह्यग्रन्थत्याग उपयोगी मुमुक्षोः।" वि. टी. / गा. 'तो उप्पीले' ४७९ / पृ.३६७।

८. "परीषहैः पराजितो न संयमं परिपालयतीति मन्यते।" वि.टी./गा.'पियधम्मा' ६४६ / पृ.४३७।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

देने और अनुग्रह करने में तत्पर रहता है, उसमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति-सम्बन्धी व्यापार सदा चला करता है, मन, वचन और काय के द्वारा सचित्त, अचित्त, छोटे और बड़े पदार्थों के ग्रहण और संवर्धन का प्रयास होता रहता है। गृहस्थाश्रम में स्थित मनुष्य असार में सारता, अनित्य में नित्यता, अशरण में शरणता, अशुचि में शुचिता, दुःख में सुख, अहित में हित, अनाश्रय में आश्रय और शत्रु में मित्र मानता हुआ दौड़ता फिरता है। भय और शंका से ग्रस्त रहते हुए भी आश्रय में स्थित रहता है। गृहस्थाश्रम में स्थित मनुष्य काल के घने अन्धकारपटल से वैसे ही घिर जाता है, जैसे लोहे के पिंजड़े में बन्द सिंह, जाल में फँसा मृगकुल, कीचड़ में फँसा बूढ़ा हाथी, पाश में बद्ध पक्षी, कारागार में कैद चोर, व्याघ्रों के बीच में बैठा दुर्बल हिरण तथा जाल में फँसा मगरमच्छ। रागरूपी महानाग गृहस्थ को सताते हैं। चिन्तारूपी डाकिनी उसका भक्षण करती है। शोकरूपी भेड़िये उसका पीछा करते हैं। कोपरूपी अग्नि उसे जलाकर राख कर देती है। दुराशारूपी लताओं से वह ऐसा बँध जाता है कि हाथ-पैर भी नहीं हिला पाता। प्रियावियोगरूपी वज्रपात उसके टुकड़े-टुकड़े कर डालता है। इच्छित वस्तु की अप्राप्तिरूप बाणों का वह तरकश बन जाता है। मायारूपी बुढ़िया उसका प्रगाढ़ आलिंगन करती है। तिरस्काररूपी कठोर कुठार उसे काटते रहते हैं। अपयशरूपी मल से वह लिप्त हो जाता है। मोहमहावनरूपी हाथी उसे मार डालता है। पापरूपी हत्यारों के द्वारा वह ज्ञानशून्य कर दिया जाता है। भयरूपी लौह शलाकाओं से कोंचा जाता है। प्रतिदिन श्रमरूपी कौओं के द्वारा खाया जाता है। ईर्ष्यारूपी स्याही से काला किया जाता है। परिग्रहरूपी मगरमच्छों के द्वारा पकड़ा जाता है। गृहस्थाश्रम में स्थित होने पर असंयम की ओर जाता है। असूयारूपी पत्नी का प्रिय बन जाता है। अपने को मानरूपी दानव का स्वामी मानने लगता है। गृहस्थाश्रम में वह विशाल धवलचरित्ररूपी तीन छत्रों की छाया के सुख से वंचित रहता है। वह अपने को संसाररूपी जेल से मुक्त नहीं कर पाता। कर्मों का जड़-मूल से विनाश करने में असमर्थ रहता है। मृत्युरूपी विषवृक्ष को जला पाना संभव नहीं होता। मोहरूपी दृढ़ शृंखला को तोड़ नहीं पाता। विचित्र योनियों में जाने से अपने को रोक नहीं सकता।'' (वि.टी./गा.'एवं केई गिहवास'१३१९/पृ.६४९-६५०)।

अपराजितसूरि ने गृहस्थजीवन का जो यह भयंकर चित्रण किया है, उससे गृहस्थमुक्ति की तो स्वप्न में भी कल्पना नहीं की जा सकती। स्पष्ट है कि टीकाकार गृहस्थमुक्ति को सर्वथा असंभव मानते हैं, जब कि यापनीयमत में गृहस्थमुक्ति स्वीकार की गई है। इससे सिद्ध है कि अपराजितसूरि किसी भी तरह यापनीय नहीं हैं, वे पूर्णतः दिगम्बर हैं।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

३

## परतीर्थिकमुक्ति-निषेध

परतीर्थिक या अन्यलिंगी वह कहलाता है, जो जिनधर्म का अनुयायी नहीं है, अपितु अन्यधर्म को मानता है। ऐसा मनुष्य जिनदेव, जिनशास्त्र और जिनगुरु में श्रद्धा न रखने के कारण मिथ्यादृष्टि होता है और उसका बाह्यलिंग भी दिगम्बरलिंग नहीं होता, अपितु सवस्त्र अथवा अन्य परिग्रह से युक्त नाग्न्यलिंग होता है। अपराजितसूरि ने उसे मोक्ष के अयोग्य बतलाया है। वे कहते हैं—

"**एतदुक्तं भवति कर्मनिर्मूलनं कर्त्तुमसमर्थं तपः सम्यग्दृष्टेरप्यसंयतस्य, पुनरितरस्य असति संवरे प्रतिसमयमुपचीयमानकर्मसंहतेः का मुक्तिः?**" (वि.टी. / गा.'सम्मादिट्ठिस्स' ७)।

**अनुवाद**—"असंयमी सम्यग्दृष्टि का भी तप कर्मों को जड़ से उखाड़ने में असमर्थ है, तब जो सम्यग्दृष्टि नहीं है, उसकी तो बात ही क्या? उसके कर्मों का संवर नहीं होता, प्रतिसमय कर्म बँधते रहते हैं। उसकी मुक्ति कैसे संभव है?"

अपराजितसूरि उपदेश देते हैं—"**ततो दुःखजलवाहिनीं मिथ्यादृष्टिकुल्ल्यामुल्लङ्घ्य, प्रतिपद्यस्व जैनीं दृष्टिमिति तत्र स्थिरताकरणम्।**" (वि. टी. / गा.'उवगूहणठिदि' ४४ / पृ.८२)।

**अनुवाद**—"मिथ्यादृष्टिरूपी नदी में दुःखरूपी जल बहता है, अतः उसे पार करके जैनी दृष्टि (सम्यग्दर्शन) प्राप्त करो।"

यही बात वे इन शब्दों में दुहराते हैं—"**स्वल्पापि मिथ्यात्वविषकणिका कुत्सितासु योनिषु उत्पादयति किमस्ति वाच्यं सर्वस्य जिनदृष्टस्याश्रद्धाने?**" (वि.टी. / गा. 'जस्स पुण' ६० / पृ.१०२)।

**अनुवाद**—"मिथ्यात्वरूपी विष की छोटी सी भी बूँद कुत्सित योनियों में उत्पन्न कराती है, तब जिनेन्द्र द्वारा दृष्ट समस्त तत्त्वों का श्रद्धान न होने पर तो कहना ही क्या है?

वे आगे कहते हैं—"द्रव्यकर्म और भावकर्मरूपी शत्रुओं को जो जीत लेते हैं, उन्हें 'जिन' कहते हैं। उनके वचन जीवादिपदार्थों के यथार्थस्वरूप के प्रकाशन में दक्ष हैं। वे (जिनवचन) प्रत्यक्षादि प्रमाणों के अविरुद्ध हैं। उन वचनों के अर्थ को न जानने से जो अतत्त्वश्रद्धान होता है, उससे तथा उन वचनों में निरूपित मार्ग के अनुसार आचरण न करने से जीव संसाररूपी महाअटवी में प्रवेश करता है।" (वि.टी. / गा. 'मिच्छत्तमोहिद' १७६३)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इस कथन का अभिप्राय यह है कि जब विषयराग से निवृत्ति होती है और सकल परिग्रह का त्याग होता है, तब संयतगुणस्थान की प्राप्ति होती है। सकलपरिग्रह के त्याग का अर्थ है **आचेलक्य** अर्थात् वस्त्रसहित समस्त बाह्य वस्तुओं का त्याग, जैसा कि अपराजित सूरि ने कहा है—"**चेलग्रहणं परिग्रहोपलक्षणं, तेन सकलपरिग्रहत्याग आचेलक्कमित्युच्यते।**" (वि.टी./गा. 'आचेलक्कु' ४२३)। और चूँकि स्त्री वस्त्रत्याग नहीं कर सकती, इसलिए उसके निश्चयनय से अपरिग्रह महाव्रत भी नहीं होता और वह विषयराग से भी निवृत्त नहीं होती, इसलिए उसे संयतगुणस्थान भी प्राप्ति नहीं होता। अतः उसकी मुक्ति भी असंभव है।

३. अपराजितसूरि ने अचेल को ही निर्ग्रन्थ कहा है।[९] इससे स्पष्ट है कि स्त्री अचेल न हो सकने के कारण निर्ग्रन्थ (सकलपरिग्रहत्यागी) नहीं हो सकती, जबकि निर्ग्रन्थता ही मुक्ति का मार्ग है।

४. अपराजितसूरि ने सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह कही है कि अचेललिंग से ही मोक्ष हो सकता है। वे लिखते हैं—"अचेललिंग जिनलिंग है। जिन (तीर्थंकर) मोक्ष चाहते थे और मोक्ष के उपाय को जानते थे। अतः उन्होंने जिस लिंग को ग्रहण किया था, वही लिंग अन्य मोक्षार्थियों के लिए भी योग्य है। जो जिस वस्तु को चाहता है और विवेकवान् होता है वह उसके अनुपाय को नहीं अपनाता, जैसे घटनिर्माण की इच्छा रखनेवाला तुरी, वेमा आदि को। इसी प्रकार मोक्ष का अभिलाषी वस्त्र ग्रहण नहीं करता, क्योंकि वह मोक्ष का उपाय नहीं है। किन्तु जो अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति का उपाय है, उसे मनुष्य नियम से अपनाता है, जैसे घटनिर्माण की इच्छावाला चक्र आदि को। इसी प्रकार मुनि भी मोक्ष का उपाय होने से अचेलता को स्वीकार करते हैं। और अचेलता ज्ञान-दर्शन की तरह मुक्ति का उपाय है, यह जिनदेव के आचारण से सिद्ध है।"[१०]

इन शब्दों से अपराजितसूरि ने स्पष्ट कर दिया है कि जिनलिंग को अपनाये बिना मोक्ष नहीं हो सकता और उसे स्त्रियाँ अपना नहीं सकतीं, अतः वे मोक्ष की पात्र नहीं हैं।

५. इसी बात की पुनरावृत्ति वे निम्नलिखित शब्दों में करते हैं—"वस्त्रमात्र के परित्याग से कोई निर्ग्रन्थ नहीं होता। यदि ऐसा हो, तो तिर्यंच भी निर्ग्रन्थ कहलाने लगेंगे। वस्तुतः चौदह प्रकार के आभ्यन्तर परिग्रह के त्याग से जो भावनैर्ग्रन्थ्य प्रादुर्भूत

---

९. "चेलपरिवेष्टिताङ्ग आत्मानं निर्ग्रन्थं यो वदेत्तस्य किमपरे पाषण्डिनो न निर्ग्रन्थाः? वयमेव, न ते निर्ग्रन्था इति वाङ्मात्रं नाद्रियते मध्यस्थैः।" वि.टी./गा 'आचेलक्कु' ४२३/पृ.३२३ ।
१०. देखिए, पूर्व शीर्षक १।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

होता है, वही मोक्ष का उपाय है और भावनैर्ग्रन्थ्य का उपाय है दशविध बाह्य ग्रन्थ (परिग्रह) का त्याग।''[११] दशविध बाह्यपरिग्रह में वस्त्र भी सम्मिलित है, यह पूर्व में दर्शाया जा चुका है।[१२] इस कथन में पुनः वस्त्रत्याग को अनिवार्य बतलाकर अपराजितसूरि ने स्त्रियों के लिए मोक्ष का निषेध कर दिया है।

६. आगे तो वे एकदम स्पष्ट शब्दों में पुरुष शरीर को पूर्ण संयम का साधन निरूपित कर स्त्रीशरीर को संयम के अयोग्य घोषित कर देते हैं, जिसका तात्पर्य है स्त्रियों को मोक्ष के अयोग्य घोषित करना। अपराजितसूरि के निम्नलिखित कथन द्रष्टव्य हैं—

''**परिपूर्णं संयममाराधयितुकामस्य जन्मान्तरे पुरुषतादिप्रार्थना प्रशस्तं निदानम्।**'' (वि.टी./गा. 'मरणाणि सत्तरस' २५/पृ.५६)।

**अनुवाद**—''परिपूर्ण संयम की आराधना करने की इच्छा से परभव में पुरुषत्व आदि पाने की इच्छा करना **प्रशस्तनिदान** है।''

''**संयमनिमित्तं पुरुषत्वमुत्साहः, बलं शरीरगतं दार्ढ्यं, वीर्यं वीर्यान्तरायक्षयोपशमजः परिणामः। अस्थिबन्धविषयः वज्रर्षभनाराचसंहननादिः। एतानि पुरुषत्वादीनि संयमसाधनानि मम स्युरिति चित्तप्रणिधानं प्रशस्तनिदानम्।**'' (वि.टी./गा. 'संजमहेदुं पुरिसत्त' १२१०)।

**अनुवाद**—''पुरुषत्व, उत्साह, बल (शरीरिक दृढ़ता), वीर्य (वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से उत्पन्न परिणाम) और अस्थिबन्धविषयक वज्रवृषभनाराचसंहनन आदि संयम के साधन हैं। ये पुरुषत्व आदि संयम के साधन मुझे प्राप्त हों, चित्त में ऐसा विचार करना **प्रशस्तनिदान** कहलाता है।''

''**पुरुषत्वादिनिदानमपि मोक्षाभिलाषिणो मुनयो न वाञ्छन्ति। यस्मात् पुरुषत्वादिरूपो भवपर्यायः। भवात्मकश्च संसारः भवपर्यायपरिवर्तस्वरूपत्वात्।**'' (वि.टी./गा. 'पुरिसत्तादिणिदाणं' १२१८/पृ.६१६)।

**अनुवाद**—मोक्ष के अभिलाषी मुनि 'मैं मरकर पुरुष होऊँ या मुझे वज्रवृषभनाराचसंहनन आदि प्राप्त हों' ऐसा भी निदान नहीं करते। क्योंकि पुरुष आदि पर्याय भवरूप है और भवपर्याय परिवर्तनस्वरूप होने से संसार भवमय है।''

''**पुरुषत्वादिकं संयमलाभश्च भविष्यति परजन्मनि। कस्य? कृतरत्नत्रयाराधनस्य निश्चयेन। तदर्थमकृतेऽपिनिदाने।**'' (वि.टी./गा.'पुरिसत्तादीणि' १२२०)।

---

११. देखिए, पादटिप्पणी ७।

१२. ''कुप्यं वस्त्रं---।'' वि.टी./गा. 'बाहिरसंगा' १११३/पृ.५७१।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

**अनुवाद**—"जो रत्नत्रय की आराधना करता है, उसे निदान न करने पर भी आगामी जन्म में पुरुषत्व तथा संयम का लाभ निश्चितरूप से होता है।"

"**यदि तावत् उच्चैर्गोत्रता, पुरुषत्वं, स्थिरशरीरता, अदरिद्रकुलप्रसूतिर्बन्धुतेत्येवमादिकं मुक्तेः परम्परया कारणमपि चित्ते क्रियमाणमपि संसारवृद्धिं करोति, कथं न करिष्यति दीर्घसंसारं परवधे चित्तप्रणिधानम्?**" (वि.टी. /गा.'जइदा उच्चत्तादि' १२३३)।

**अनुवाद**—"उच्च गोत्र, पुरुषपर्याय, शरीर की स्थिरता, अदरिद्रकुल में जन्म तथा बन्धुबान्धव आदि परम्परया मुक्ति के कारण हैं, तो भी चित्त में इनकी प्राप्ति का विचार करने से संसार की वृद्धि होती है, तब परवध का चित्त में विचार करना दीर्घसंसार का कारण कैसे नहीं होगा?"

इन समस्त वक्तव्यों में अपराजितसूरि ने पुरुषशरीर और वज्रवृषभनाराच संहनन को परिपूर्ण संयम का साधन तथा मुक्ति का परम्परया कारण कहा है, स्त्रीशरीर का कहीं नाम भी नहीं लिया। इससे स्पष्ट है कि टीकाकार पुरुषशरीर को ही मोक्ष की साधना के योग्य मानते हैं, स्त्रीशरीर को नहीं। यह उनके स्त्रीमुक्ति-निषेधक होने का ज्वलन्त प्रमाण है।

७. अपराजितसूरि ने आर्यिकाओं के लिए **संयती** शब्द का प्रयोग नहीं किया है, यह भी ध्यान देने योग्य है। यथा—

"**सव्वगणं—संयतानां, आर्यिकाणां, श्रावकाणाम् इतरासां च समितिम्।**" (वि.टी. / गा. 'इत्तिरियं सव्वगणं' १७९)।

**अनुवाद**—"सर्वगण का अर्थ है संयत (मुनि), आर्यिका, श्रावक-श्राविका तथा अन्य जनों का समूह।"

"**चैत्यसंयतानार्यिकाः श्रावकांश्च बालमध्यमवृद्धांश्च पृष्ट्वा कृतगवेषणो याति इति प्रश्नकुशलः।**" (वि.टी. /गा. 'गच्छेज्ज एगरादिय' ४०५)।

**अनुवाद**—"जिनालय में स्थित संयतों (मुनियों), आर्यिकाओं और श्रावकों से तथा बाल, प्रौढ़ और वृद्धों से भिक्षास्थान ज्ञात करके गमन करना प्रश्नकुशलता है।"

इन वाक्यों में टीकाकार ने मुनियों के लिए तो 'संयत' शब्द का प्रयोग किया है, किन्तु आर्यिकाओं के लिए 'संयती' शब्द प्रयुक्त नहीं किया। इससे उन्होंने यही ध्वनित किया है कि स्त्रियाँ संयतगुणस्थान के योग्य नहीं होतीं अर्थात् स्त्रीपर्याय से मुक्ति संभव नहीं है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

८. दिगम्बर और श्वेताम्बर[१३] दोनों परम्पराओं के आगमों के अनुसार स्त्रियों को चौदह पूर्वों का ज्ञान नहीं हो सकता। और तत्त्वार्थसूत्र में कहा गया है कि आदि के दो शुक्लध्यान पूर्वविदों को होते हैं—'**शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः**' (९/३७)। इस तरह स्त्रियों को शुक्लध्यान भी नहीं हो सकते, जिसका अर्थ है निर्जरा का न होना और निर्जरा के न होने का अर्थ है मोक्ष का न होना। यह अपराजितसूरि को मान्य है। वे कहते हैं—"**न ह्यकृतश्रुतपरिचयस्य धर्मशुक्लध्याने भवितुमर्हतः। अपायोपाय-भवविपाकलोकविचयादयो धर्मध्यानभेदाः। अपायादिस्वरूपज्ञानं जिनवचनबलादेव 'शुक्लेचाद्ये पूर्वविदः' इत्यभिहितत्वाच्च।**" (वि.टी. / गा. 'सज्झायं कुव्वंतो' १०३ / पृ.१३७)। इससे भी स्पष्ट है कि अपराजित सूरि को स्त्रीमुक्ति मान्य नहीं है।

अपराजितसूरि की यह स्त्रीमुक्तिविरोधी मान्यता यापनीयमत के विरुद्ध है। यापनीय-मत स्त्रीमुक्ति का प्रबल समर्थक है। इससे सिद्ध है कि विजयोदयाटीका के कर्त्ता यापनीयमतानुयायी नहीं हैं, अपितु दिगम्बरमतानुयायी हैं।

## ५
## अपरिग्रहमहाव्रत का लक्षण यापनीयमत-विरुद्ध

अपराजितसूरि ने मिथ्यात्व, तीन वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा और चतुर्विध कषाय ये चौदह आभ्यन्तर परिग्रह के भेद तथा क्षेत्र, वास्तु, धन (सुवर्णादि), धान्य (ब्रीहि आदि), कुप्य (वस्त्र), भाण्ड (वर्तन), द्विपद (दासदासी), चतुष्पद (हाथी-घोड़े आदि), यान (पालकी आदि) तथा शयन और आसन ये दस बाह्यपरिग्रह के भेद बतलाये हैं। इन दोनों प्रकार के परिग्रहों के त्याग को अपरिग्रहमहाव्रत कहा है।[१४] और दोनों में कारण-कार्य सम्बन्ध बतलाते हुए कहा है कि जैसे तुषसहित चावल का तुष दूर किये बिना उसके भीतर का मल नहीं हटाया जा सकता, वैसे ही बाह्यपरिग्रह का त्याग किये बिना आभ्यन्तर परिग्रह का त्याग संभव नहीं है।[१५]

उन्होंने यह भी कहा है कि चतुर्दश प्रकार के आभ्यन्तर ग्रन्थ के त्याग से भावनैर्ग्रन्थ्य प्रकट होता है। वही मोक्ष का उपाय है। भावनैर्ग्रन्थ्य की प्राप्ति का उपाय होने से दस प्रकार के बाह्यग्रन्थ का त्याग मुमुक्षु के लिए उपयोगी है। (वि.टी. / गा. 'तो उप्पीले' ४७९ / पृ. ३६६)।

---

१३. अरहन्त-चक्किकेसवबलसंभिन्ने य चारणे पुव्वा।
गणहर-पुलाय-आहारगं च न हु भविय महिलाणं॥ १५०६॥ प्रवचनसारोद्धार।

१४. विजयोदयाटीका / गा. 'मिच्छत्तवेदरागा' १११२, 'बाहिरसंगा' १११३।

१५. देखिए , पादटिप्पणी ४ में मूल उद्धरण।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अपरिग्रह महाव्रत की यह परिभाषा यापनीयमत के विरुद्ध है, क्योंकि इससे सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति और अन्यलिंगी-मुक्ति, सबका निषेध हो जाता है, जो यापनीयमत की मौलिक मान्यताएँ हैं। इससे भी सिद्ध है कि अपराजितसूरि यापनीय-मतानुयायी नहीं हैं, अपितु दिगम्बर-मतानुगामी हैं।

## ६
## केवलिभुक्तिनिषेध

अपराजितसूरि ने केवल प्रमत्तसंयतगुणस्थान में ही मुनि को क्षुधापरीषह और भोजन की आकांक्षा बतलाई है, उससे ऊपर के गुणस्थानों में नहीं। सम्यग्दर्शन के अतीचार से सम्बन्धित शंका का समाधान करते हुए वे कहते हैं—

"कांक्षा, गार्द्धर्यम् आसक्तिः। सा च दर्शनस्य मलम्। यद्येवं आहारे कांक्षा, स्त्रीवस्त्र-गन्धमाल्यालङ्कारादिषु वाऽसंयतसम्यग्दृष्टेर्विरताविरतस्य वा भवति। **तथा प्रमत्तसंयतस्य परीषहाकुलस्य भक्ष्यपानादिषु कांक्षा सम्भवतीति** सातिचारदर्शनता स्यात्। तथा भव्यानां मुक्ति-सुखाकांक्षा अस्त्येव। इत्यत्रोच्यते न कांक्षामात्रमतीचारः किन्तु दर्शनाद् व्रताद्दाना-देवपूजायास्तपसश्च जातेन पुण्येन ममेदं कुलं, रूपं, वित्तं, स्त्रीपुत्रादिकं, शत्रुमर्द्दनं, स्त्रीत्वं, पुंस्त्वं वा सातिशयं स्यादिति कांक्षा इह गृहीता, एषा अतिचारो-दर्शनस्य।" (वि.टी./गा. 'सम्मत्तादीचारा' ४३)।

**अनुवाद**—"गृद्धि या आसक्ति को कांक्षा कहते हैं। वह सम्यग्दर्शन का मल है। **प्रश्न**—यदि ऐसा है तो असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा विरताविरत (श्रावक) को आहार की या स्त्री, वस्त्र, माला, अलंकार आदि की कांक्षा होती है। **तथा परीषह से आकुल प्रमत्तसंयत मुनि को भोजन-पान आदि की कांक्षा होती है।** वह भी सम्यग्दर्शन का अतिचार कहलायेगी? और भव्यों को मुक्तिसुख की आकांक्षा होती ही है। वह भी सम्यग्दर्शन का अतिचार कहलायेगी? **समाधान**—कांक्षामात्र अतिचार नहीं है, अपितु सम्यग्दर्शन, व्रतधारण, देवपूजा और तप से उत्पन्न हुए पुण्य से मुझे अमुक कुल, रूप, धन, स्त्रीपुत्रादि, शत्रुविनाश अथवा सातिशय स्त्रीत्व या पुरुषत्व प्राप्त हो, इस प्रकार की कांक्षा यहाँ इष्ट है। वही सम्यग्दर्शन का अतिचार है।

इस वक्तव्य में अपराजितसूरि ने यह स्पष्ट किया है कि मुनियों को क्षुधापरीषह और भोजन-पान की आकांक्षा केवल प्रमत्तसंयत (छठे) गुणस्थान में होती है, उससे ऊपर के गुणस्थानों में नहीं। इस तरह उन्होंने **'केवली कवलाहार करते हैं'**, इस श्वेताम्बरीय और यापनीय-मान्यता का निषेध किया है। यह भी उनके यापनीय-मतानुयायी न होने का एक प्रमाण है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

७

## यापनीयमत-विरुद्ध अन्य सिद्धान्त

अपराजितसूरि ने विजयोदयाटीका में यापनीयमत-विरोधी अन्य सिद्धान्तों का भी प्रतिपादन किया है। उनका यहाँ संक्षेप में निर्देश किया जा रहा है।

१. विजयोदयाटीका में गुणस्थानों के अनुसार जीव में विभिन्न भावों की योग्यता बतलायी गयी है। जैसे—

"असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा संयतासंयत-गुणस्थानवाले जीव विषयराग से मुक्त तथा सकलपरिग्रह के त्यागी नहीं होते।" (वि.टी./गा.'सिद्धे जयप्प' १)।

"असंयतसम्यग्दृष्टि तथा विरताविरत को आहार, स्त्री, वस्त्र, गन्ध, माल्य, अलंकार आदि की इच्छा होती है, और प्रमत्तसंयत को क्षुधापरीषह होता है तथा भोजन-पान की कांक्षा होती है।" (वि.टी./गा.'सम्मत्तादीचारा'४३)।

यह गुणस्थानानुसार जीवभाव-स्वामित्व-प्रदर्शन यापनीयमत के विरुद्ध है, क्योंकि इस सिद्धान्त से सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति, अन्यलिंगीमुक्ति आदि यापनीय-मतों का निषेध होता है, जैसा कि उद्धरणों से स्पष्ट है।

२. विजयोदयाटीका में दिगम्बरमतानुसार साधु के मूलगुणों और उत्तरगुणों का उल्लेख है,[१६] जिनमें आचेलक्य, केशलोच, स्थितिभक्त, पाणिपात्रभोजित्व[१७] आदि परिगणित हैं। ये यापनीयमत के अनुकूल नहीं हैं, क्योंकि उसके अनुसार आचेलक्य के बिना भी आपवादिक सचेललिंग से मुक्ति मानी गई है।

३. विजयोदयाटीका में वेदत्रय और वेदवैषम्य स्वीकार किये गये हैं[१८] जो द्रव्यस्त्रीमुक्ति के विरोधी होने से यापनीय मत में मान्य नहीं है।

---

१६. वि.टी./गा. 'जदि मूलगुणे' ५८६।

१७. वि.टी./गा. 'सिद्धे जयप्प' १, 'अच्चेलक्कं लोचो' ७९, 'उत्तरगुण उज्जमणे' ११८, 'जदि मूलगुणे उत्तरगुणे य' ५८६, 'को तस्स दिज्जइ' ५८७, 'सेवेज्ज वा' ६७७, 'गच्छंहि केइ' १९४४, 'सव्वेसु मूलुत्तरगुणेसु' १९५०।

१८. "स्त्रीपुंन्नपुंसकवेदे---" (वि.टी./गा.'मरणाणि सत्तरस' २५/पृ.५९) "त्रिविधवेदोदयजनितः प्राणिनां लिङ्गत्रयवर्तिनां परस्पराभिलाषः।" (वि.टी./गा. 'सोक्खं अणवेक्खित्ता' १२४४), "ततो नपुंसकं वेदं स्त्रीवेदं हास्यादिषट्कं पुंवेदं सञ्ज्वलनक्रोधमानमायाः क्षपयति, पश्चाल्लोभसञ्ज्वलनम्।" (वि.टी./गा. 'तत्तो णपुंसगित्थीवेदं' २०९१)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

४. अपराजितसूरि ने साधु के लिए केशलोच अनिवार्य बतलाया है और कहा है कि लोच करने से धर्म में उसकी महान् श्रद्धा का प्रदर्शन होता है, और दूसरों के मन में भी धर्म के प्रति श्रद्धा की उत्पत्ति और वृद्धि होती है। लोच से कायक्लेश नामक उग्र तप होता है और अन्य दुःखों को सहन करने की सामर्थ्य आती है। लोच का दुःख धैर्यपूर्वक सहने से अशुभकर्मों की निर्जरा होती है।[१९] किन्तु यापनीयमान्य श्वेताम्बर-आगम **कल्पसूत्र** में लोच को अनिवार्य नहीं बतलाया गया है। भिक्षु-भिक्षुणियाँ कैंची और छुरे से भी मुण्डन करा सकती हैं।[२०] अतः केशलोच की अनिवार्यता का प्रतिपादन भी यापनीयमत के विरुद्ध है।

५. विजयोदयाटीका में साधु के लिए मांस, मधु और मद्य के सेवन का कठोरतापूर्वक निषेध किया गया है।[२१] किन्तु यापनीयमान्य श्वेताम्बर-आगम कल्पसूत्र में इनको केवल बार-बार खाने-पीने का निषेध है, सर्वथा निषेध नहीं।[२२] अतः विजयोदयाटीका का यह सिद्धान्त भी यापनीयमत के विरुद्ध है।

६. अपराजितसूरि को कालद्रव्य का स्वतन्त्र अस्तित्व मान्य है।[२३] किन्तु श्वेताम्बर-आगमों में कालद्रव्य की स्वतंत्र सत्ता नहीं मानी गयी है। यापनीय श्वेताम्बर-आगमों को प्रमाण मानते थे। अतः उन्हें भी काल-द्रव्य का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार्य नहीं हो सकता। अपराजितसूरि की यह मान्यता भी यापनीयमत-विरोधी है।

७. विजयोदयाटीका में चार अनुयोगों के जो नाम दिये गये हैं, वे बिलकुल वही हैं, जो दिगम्बराचार्य समन्तभद्रकृत रत्नकरण्डश्रावकाचार में उपलब्ध होते हैं, जैसे प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग।[२४] किन्तु श्वेताम्बरसाहित्य में उनके नाम इस प्रकार हैं—चरणकरणानुयोग, धर्माकथानुयोग, गणितानुयोग और द्रव्यानुयोग। इनके अतिरिक्त अपृथक्त्वानुयोग और पृथक्त्वानुयोग ये दो नाम भी मिलते हैं।[२५] यापनीय

---

१९. वि.टी. / गा. 'अच्चेलक्कं लोचो' ७९, 'अप्पा दमिदो' ९०, 'आणक्खिदा' ९१।
२०. कल्पसूत्र / सूत्र २८३ / प्राकृतभारती जयपुर।
२१. वि.टी. / गा. 'चत्तारि महावियडीओ २१५' 'एसणणिक्खेवा' १२००।
२२. कल्पसूत्र / सूत्र २३७/ प्राकृतभारती जयपुर।
२३. वि.टी. / गा. 'धम्माधम्मा' ३५, 'पंचेव अत्थिकाया' १७०६।
२४. "विचित्रं श्रुतं प्रथमानुयोगः करणानुयोगश्चरणानुयोगो द्रव्यानुयोग इत्यनेन विकल्पेन।" वि.टी. / गा.'वत्ता कत्ता' ५०२।
२५. क— श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री : जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा / पृष्ठ १६।
ख—प्रभावकचरित्र : आर्यरक्षित / श्लोक ८२-८४।
ग— आवश्यकनिर्युक्ति / गा. ३६३-३६७।
घ— विशेषावश्यकभाष्य / गा. २२८४-२२९५।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

श्वेताम्बर-आगमों को प्रमाण मानते थे, अतः उनके अनुसार भी अनुयोगों के यही नाम हो सकते हैं। अपराजितसूरि द्वारा दिगम्बरमत का अनुसरण सिद्ध करता है कि वे यापनीयमत के अनुयायी नहीं हैं।

विजयोदयाटीका में प्रतिपादित ये सभी सिद्धान्त यापनीयमत के विरुद्ध हैं। इनसे सिद्ध होता है कि अपराजितसूरि यापनीयसंघ के नहीं, अपितु दिगम्बरसंघ के आचार्य हैं।

✧✧✧

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

## द्वितीय प्रकरण

# यापनीयपक्षधर हेतुओं की असत्यता एवं हेत्वाभासता

यतः विजयोदयाटीका में प्रतिपादित यापनीयमत-विरुद्ध सिद्धान्तों से अपराजितसूरि का यापनीय होना असिद्ध हो जाता है, अतः सिद्ध होता है कि यापनीयपक्षधर विद्वानों ने उन्हें यापनीय सिद्ध करने के लिए जो हेतु प्रस्तुत किये हैं, वे या तो असत्य हैं या उनमें हेतु का लक्षण घटित नहीं होता, अतः वे हेत्वाभास हैं। इसका प्रतिपादन आगे किया जा रहा है।

१

## मुनि के लिए सचेल अपवादलिंग अमान्य

**यापनीयपक्ष**

अपराजितसूरि ने आचारांगादि श्वेताम्बर आगमों से उद्धरण देकर स्पष्ट किया है कि उनमें भी अचेलता को ही मुनि का लिंग बतलाया है, मात्र विशेष परिस्थितियों में वस्त्रग्रहण की अनुमति दी गयी है। इस पर टिप्पणी करते हुए पं० नाथूराम जी प्रेमी ने लिखा है—"इससे अच्छी तरह स्पष्ट हो जाता है कि व्याख्याकार यापनीय हैं और वे उन सब आगमों को मानते हैं, जिनके उद्धरण उन्होंने अचेलता के प्रकरण में दिये हैं। उनका अभिप्राय यह है कि साधुओं को नग्न रहना चाहिए, नग्न रहने की ही आगमों की प्रधान आज्ञा है और कहीं-कहीं जो वस्त्रादि का उल्लेख मिलता है, सो उसका अर्थ इतना ही है कि यदि कभी अनिवार्य जरूरत आ पड़े, शीतादि की तकलीफ बरदाश्त न हो, या शरीर बेडौल, घिनौना हो, तो कपड़ा ग्रहण किया जा सकता है, परन्तु वह ग्रहण करना कारणसापेक्ष है और एक तरह से अपवादरूप है।---विजयोदयाटीका का यह एक ही प्रसंग उसे यापनीय सिद्ध करने के लिए काफी है।" (जै.सा.इ./द्वि.सं./पृ.६५-६६)।

श्रीमती डॉ० कुसुम पटोरिया का कथन है—"अपराजितसूरि ने '**यतीनामपवाद-कारणत्वात् परिग्रहोऽपवादः**' कहकर यति के परिग्रहधारण को ही अपवाद कहा है। अपवाद उत्सर्गसापेक्ष होता है। परिग्रहत्याग मुनि का उत्सर्गलिंग है, अतः परिग्रहधारण यति का ही अपवादलिंग होगा। गृहस्थ तो परिग्रही होता ही है। अपवादलिंगी मुनि के साथ भक्तप्रत्याख्यान के लिए उत्सुक गृहस्थ के लिंग को भी अपवादलिंग कहा गया है।" (यापनीय और उनका साहित्य / पृ.१२८)।

डॉ० सागरमल जी लिखते हैं—"भगवती-आराधना मूल गाथा ७६ से ८६ तक में और उसकी अपराजित की विजयोदयाटीका में मुनि के उत्सर्ग और अपवादलिंग की विस्तृत चर्चा है। इसमें वस्त्रधारण को अपवादलिंग माना गया है। हमारे दिगम्बर आचार्य वस्त्रधारी को श्रावक की कोटि में वर्गीकृत करते हैं, उसे किसी भी स्थिति में मुनि नहीं मानते हैं, जब कि अपराजित उन्हें मुनि की कोटि में ही वर्गीकृत करते हैं, कहीं भी उन्हें उत्कृष्ट श्रावक नहीं कहते हैं। यह स्मरण रखना चाहिए कि अपवादलिंग की यह चर्चा मुनि के सन्दर्भ में ही है, गृहस्थ के सन्दर्भ में नहीं है। गृहस्थ तो सदैव ही वस्त्रयुक्त होता है। जो वस्त्रधारी ही है, उसके लिए वस्त्रधारण अपवाद कैसे हो सकता है? किन्तु हमारे कुछ मूर्धन्य दिगम्बर विद्वान् शब्दों को तोड़-मरोड़ कर अपवादलिंग को गृहस्थलिंग बताने का प्रयास करते हैं। पं० कैलाश चन्द्र जी भगवती-आराधना की भूमिका में लिखते हैं कि "इस टीका में अपराजितसूरि ने औत्सर्गिक का अर्थ सकलपरिग्रह के त्याग से उत्पन्न हुआ किया है तथा आपवादिक लिंग का अर्थ परिग्रहसहित किया है, क्योंकि यतियों के अपवाद का कारण होने से परिग्रह को अपवाद कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि आपवादिक लिंग का धारी गृहस्थ ही होता है, मुनि तो औत्सर्गिक लिंग का ही धारी होता है।" किन्तु अपवाद की उनकी यह व्याख्या भ्रान्त है। मूलग्रन्थ और टीका में अपवादलिंग का तात्पर्य लिंग, अण्डकोष आदि में दोष होने पर या सम्भ्रान्त कुल का एवं लज्जालु होने पर वस्त्रयुक्त रहकर भी मुनिचर्या करना है। अपवादलिंगी मुनि ही होता है, गृहस्थ नहीं। इस सम्बन्ध में डॉ० कुसुम पटोरिया का दृष्टिकोण यथार्थ है। वे लिखती हैं कि "अपवाद उत्सर्गसापेक्ष होता है। परिग्रहत्याग मुनि का उत्सर्गलिंग है, अतः परिग्रह-धारण भी यति का ही अपवादलिंग होता होगा। गृहस्थ तो परिग्रही होता ही है। अतः अपवादलिंग मुनि का ही होता है।" यह बात इसी तथ्य को प्रमाणित करती है कि अपराजित की विजयोदया टीका यापनीयकृति है।" (जै.ध.या.स./पृ.१५७-१५८)।

**दिगम्बरपक्ष**

१.१. **सवस्त्रमुक्ति के घोर विरोधी**—प्रस्तुत अध्याय के प्रथम प्रकरण में अपराजितसूरि के अनेक वचनों को उद्धृत कर सिद्ध किया गया है कि वे सवस्त्रमुक्ति के घोर विरोधी हैं। उन्होंने तेजस्वी शब्दों में सवस्त्रमुक्ति का निषेध किया है। उन्होंने श्वेताम्बर साधुओं के सचेललिंग में ऐसे अठारह दोष बतलाये हैं, जो मोक्ष में बाधक हैं और एकमात्र अचेललिंग को ही मोक्ष का निर्दोष मार्ग प्ररूपित किया है। अतः उन्हें मोक्ष के लिए सचेल अपवादमार्ग का समर्थक बतलाना महान् असत्य कथन है। अपराजितसूरि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है—

## द्वितीय प्रकरण

# यापनीयपक्षधर हेतुओं की असत्यता एवं हेत्वाभासता

यतः विजयोदयाटीका में प्रतिपादित यापनीयमत-विरुद्ध सिद्धान्तों से अपराजितसूरि का यापनीय होना असिद्ध हो जाता है, अतः सिद्ध होता है कि यापनीयपक्षधर विद्वानों ने उन्हें यापनीय सिद्ध करने के लिए जो हेतु प्रस्तुत किये हैं, वे या तो असत्य हैं या उनमें हेतु का लक्षण घटित नहीं होता, अतः वे हेत्वाभास हैं। इसका प्रतिपादन आगे किया जा रहा है।

## १
## मुनि के लिए सचेल अपवादलिंग अमान्य

**यापनीयपक्ष**

अपराजितसूरि ने आचारांगादि श्वेताम्बर आगमों से उद्धरण देकर स्पष्ट किया है कि उनमें भी अचेलता को ही मुनि का लिंग बतलाया है, मात्र विशेष परिस्थितियों में वस्त्रग्रहण की अनुमति दी गयी है। इस पर टिप्पणी करते हुए पं० नाथूराम जी प्रेमी ने लिखा है—''इससे अच्छी तरह स्पष्ट हो जाता है कि व्याख्याकार यापनीय हैं और वे उन सब आगमों को मानते हैं, जिनके उद्धरण उन्होंने अचेलता के प्रकरण में दिये हैं। उनका अभिप्राय यह है कि साधुओं को नग्न रहना चाहिए, नग्न रहने की ही आगमों की प्रधान आज्ञा है और कहीं-कहीं जो वस्त्रादि का उल्लेख मिलता है, सो उसका अर्थ इतना ही है कि यदि कभी अनिवार्य जरूरत आ पड़े, शीतादि की तकलीफ बरदाश्त न हो, या शरीर बेडौल, घिनौना हो, तो कपड़ा ग्रहण किया जा सकता है, परन्तु वह ग्रहण करना कारणसापेक्ष है और एक तरह से अपवादरूप है।---विजयोदयाटीका का यह एक ही प्रसंग उसे यापनीय सिद्ध करने के लिए काफी है।'' (जै.सा.इ./द्वि.सं./पृ.६५-६६)।

श्रीमती डॉ० कुसुम पटोरिया का कथन है—''अपराजितसूरि ने '**यतीनामपवाद-कारणत्वात् परिग्रहोऽपवादः**' कहकर यति के परिग्रहधारण को ही अपवाद कहा है। अपवाद उत्सर्गसापेक्ष होता है। परिग्रहत्याग मुनि का उत्सर्गलिंग है, अतः परिग्रहधारण यति का ही अपवादलिंग होगा। गृहस्थ तो परिग्रही होता ही है। अपवादलिंगी मुनि के साथ भक्तप्रत्याख्यान के लिए उत्सुक गृहस्थ के लिंग को भी अपवादलिंग कहा गया है।'' (यापनीय और उनका साहित्य / पृ.१२८)।

क—"**मुक्त्यर्थी च यतिर्न चेलं गृह्णाति मुक्तेरनुपायत्वात्**" = मुक्ति का इच्छुक मुनि वस्त्रग्रहण नहीं करता, क्योंकि वह मुक्ति का उपाय नहीं है। (वि.टी./गा. 'जिणपडिरूवं' ८४/पृ.१२२)।

ख—"**सकलपरिग्रहत्यागो मुक्तेर्मार्गो, मया तु पातकेन वस्त्रपात्रादिकः परिग्रहः परीषहभीरुणा गृहीत इत्यन्तःसन्तापो निन्दा**" = सकलपरिग्रह का त्याग मुक्ति का मार्ग है, किन्तु मुझ पापी ने परीषहों के डर से वस्त्रपात्रादि-परिग्रह ग्रहण किया है, इस प्रकार मन में पश्चात्ताप करने को निन्दा कहते हैं। (वि.टी./गा.'अववादियलिंग' ८६/पृ.१२२)।

ग—"**नैव संयतो भवतीति वस्त्रमात्रत्यागेन शेषपरिग्रहसमन्वितः**" = मात्र वस्त्र-त्याग करने से मनुष्य संयत (मुनि) नहीं होता, शेष परिग्रह का भी त्याग आवश्यक है। (वि.टी./गा. 'ण य होदि संजदो' १११८/पृ.५७४)।

घ—"**चेलग्रहणं परिग्रहोपलक्षणं, तेन सकलपरिग्रहत्याग आचेलक्यमित्युच्यते**"= वस्त्रग्रहण परिग्रह का उपलक्षण है, इसलिए वस्त्र के साथ सकलपरिग्रह का त्याग ही 'आचेलक्य' कहलाता है। (वि.टी./गा.'आचेलक्कु' ४२३/पृ.३२०)।

ङ —"**न ह्यसंयतसम्यग्दृष्टेः संयतासंयतस्य वा निवृत्तविषयरागता, सकलग्रन्थ-परित्यागो वास्ति**"= जो असंयतसम्यग्दृष्टि या संयतासंयत होता है, वह न तो विषयराग से निवृत्त होता है, न ही सकलपरिग्रह का त्यागी है। (वि.टी./गा. 'सिद्धे जयप्प' १)।

सचेलमुक्तिनिषेध के इनसे अधिक स्पष्ट प्रमाण और क्या हो सकते हैं? आश्चर्य तो यह है कि विजयोदयाटीका में मुनि के लिए सचेल अपवादलिंग का इतने स्पष्ट शब्दों में निषेध होते हुए भी प्रेमी जी और उनके अनुगामियों ने यह घोषित कैसे कर दिया कि अपराजितसूरि ने उसका समर्थन किया है? और कोई कारण दिखाई नहीं देता, अतः यही सिद्ध होता है कि प्रेमी जी जैसे विद्वान् ने भी टीका का आद्योपान्त अनुशीलन किये बिना ही ऐसा तथ्यविरुद्ध निर्णय दे दिया।

१.२. **सचेललिंगधारी के मुनि होने का निषेध**—भगवती-आराधना और उसकी विजयोदयाटीका में गृहस्थों या श्रावकों के लिंग को अपवादलिंग कहा गया है, मुनि के सचेललिंग को नहीं, इसकी सप्रमाण सिद्धि भगवती-आराधना के अध्याय में की जा चुकी है। उसके दो-तीन प्रमाणों को यहाँ दुहरा देना उचित होगा—

क—अपराजितसूरि ने सचेललिंगधारी के मुनि (संयत) होने का निषेध किया है, (वि.टी./गा.१११८), अतः उनके द्वारा सचेल अपवादलिंग को मुनि का लिंग कहा ही नहीं जा सकता।

ख— अपराजितसूरि ने मुनि के द्वारा धारण किये जाने पर उसके लिए निन्दा का कारण बननेवाले सपरिग्रह लिंग को अपवादलिंग कहा है।[२६] इससे सिद्ध होता है कि उनके मत से मुनि का लिंग अपवादलिंग नहीं है, अपितु श्रावक का लिंग अपवादलिंग है।

ग— अपराजितसूरि ने कहा है कि जब अपवादलिंगधारी अपने द्वारा अपवादलिंग धारण किये जाने की निन्दा-गर्हा करते हुए समस्त परिग्रह का त्याग कर देता है, तब वह भी शुद्ध (मुक्त) हो जाता है।[२७] इससे भी सिद्ध होता है कि वे अपवादलिंग को मुनि का लिंग नहीं मानते, अपितु श्रावक का लिंग मानते हैं। यदि वे उसे मुनि का लिंग मानते, तो अपवादलिंग (समस्त परिग्रह) का त्याग किये बिना ही मुनि के शुद्ध (मुक्त) होने का कथन करते।

घ—अपराजितसूरि का कथन है कि अचेललिंग धारण करने पर ही मुनि गृहस्थ से भिन्न दिखता है– "**अचेलतादिकं शरीरधर्मो लिङ्गं---गृहित्वात् पृथग्भावो दर्शितो भवति।**" (वि.टी./गा.'जत्तासाधण'८१/पृ.११६-११७)। यह वचन भी सिद्ध करता है कि अपराजितसूरि के मतानुसार सचेल अपवादलिंग गृहस्थों का ही लिंग है।

१.३. **परिग्रहधारी यति (संयत) नहीं**—श्रीमती पटोरिया लिखती हैं कि "परिग्रहत्याग मुनि का उत्सर्गलिंग हैं, अतः परिग्रहधारण यति का ही अपवादलिंग होगा।" (या.औ.उ.सा./पृ.१२८)। यह अटकल प्रत्यक्षप्रमाण के विरुद्ध है। शिवार्य और अपराजित सूरि के ये वचन पूर्व में अनेकत्र उद्धृत किये जा चुके हैं कि वस्त्रादि-समस्त-परिग्रह के त्याग के बिना कोई भी पुरुष मुनि (संयत) नहीं होता। अतः उनके अनुसार परिग्रह-धारण मुनि का अपवादलिंग हो ही नहीं सकता। इसीलिए उन्होंने कहीं भी परिग्रहधारण को मुनि का अपवादलिंग नहीं बतलाया।

श्रीमती पटोरिया आगे कहती हैं—"परिग्रहधारण यति का ही अपवादलिंग होगा, गृहस्थ तो परिग्रही होता ही है।" (वही/पृ.१२८) इस कथन से उन्होंने यति और गृहस्थ के बीच का भेद ही समाप्त कर दिया है। जब दोनों परिग्रही हैं, तब दोनों या तो यति हैं या दोनों गृहस्थ हैं, इसलिए दोनों के लिंग अपवादलिंग हैं। यह भेदविलोप

---

२६. "यतीनामपवादकारणत्वात् परिग्रहोऽपवादः। अपवादो यस्य विद्यत इत्यपवादिकं परिग्रहसहितं लिङ्गमस्येत्यपवादिकलिङ्गं भवति।" विजयोदयाटीका/गा. 'उस्सग्गियलिंग' ७६।

२७. "अपवादलिङ्गस्थोऽपि---कर्ममलापायेन शुद्ध्यति---परिग्रहं परित्यजन् योगत्रयेण।--- सकलपरिग्रहत्यागो मुक्तेर्मार्गो मया तु पातकेन वस्त्रपात्रादिकः परिग्रहः परीषहभीरुणा गृहीत इत्यन्तःसन्तापो निन्दा, गर्हा परेषामेवं कथनं, ताभ्यां युक्तः निन्दागर्हाक्रियापरिणत इति यावत्।" विजयोदयाटीका/गा.'अववादियलिंगकदो' ८६/पृ.१२२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in